UPNUL/2013/51445 ISSN 2277-5854

श्रीविद्यामन्त्रमहायोग

(आगमतन्त्र की शोधपत्रिका)

(षाण्मासिकी)

संस्थापक सम्पादक
श्री दत्तात्रेयानन्दनाथ जी
(सीताराम कविराज)

सम्पादक मण्डल
प्रो. कमलेशदत्त त्रिपाठी
सम्मानित आचार्य, संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो. श्रीकिशोर मिश्र
संस्कृत विभाग, कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा
विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

श्रीविद्यासाधनापीठ
वाराणसी (उ.प्र.)

वर्ष 5 अङ्क 2

श्रीविद्या साधना पीठ शिवसदन गणेश बाग, नगवा, वाराणसी के लिये प्रकाशानन्दनाथ द्वारा श्रीविद्या साधना पीठ, शिवसदन, गणेश बाग, नगवा, वाराणसी से प्रकाशित एवं स्टार लाईन भवन संख्या बी 13/90 सोनारपुरा, वाराणसी से मुद्रित।

फरवरी, 2016

सम्पादक :
प्रो. श्रीकिशोर मिश्र
डॉ. राजेन्द्रप्रसाद शर्मा

प्राप्तिस्थान
प्रकाशन विभाग
श्रीविद्यासाधनापीठ
शिवसदन, गणेशबाग, नगवाँ, वाराणसी
दूरभाष : 0542-2366622

UPNUL/2013/51445
ISSN. 2277-5854

सङ्गणकटङ्कित :
विशाल कम्प्यूटर्स, जयपुर

मुद्रक :
स्टार लाईन
सोनारपुरा, वाराणसी।

मूल्य : 125/-

नोट : इस अंक में प्रकाशित समस्त लेखों के सम्बन्ध में सभी विवाद वाराणसी न्यायालय के अधीन होंगे।

UPNUL/2013/51445 ISSN 2277-5854

ŚRĪVIDYĀ MANTRAMAHĀYOGA

Āgamic-Tāntric Research Journal

(Bi-annual)

Founder-Editor

Sri Dattātreyānandanāth

(Sitaram Kaviraj)

Editorial Board

Prof. Kamaleshdatta Tripathi

Emeritus Professor, Faculty of S.V.D.V.
BHU, Varanasi-5

Prof. Shree Kishore Mishra

Department of Sanskrit, Faculty of Arts,
BHU, Varanasi-5

Dr. Rajendra Prasad Sharma

Head, Department of Philosophy,
University of Rajasthan, Jaipur.

ŚRĪVIDYĀ SĀDHANĀ PĪTHA

Varanasi (U.P.)

वर्ष 5 अङ्क 2

Printed and Published by Prakashanand Nath on behalf of Shree Vidya Sadhna Peeth, Shivsadan Ganesh Bagh, Nagwa, Varanasi.
Printed at Starline, H. No.-B-13/90, Sonarpura, Varanasi and Published at Shree Vidya Sadhna Peeth, Shivsadan, Ganesh Bagh, Nagwa, Varanasi.

February, 2016

Editor :
Prof. Shrikishore Mishra
Dr. Rajendra Prasad Sharma

Publications are available at :
Publications Department
ŚRĪVIDYĀ SĀDHANĀ PĪTHA
Shiv Sadan, Nagawa, Varanasi-221005
Ph. 0542-2366622

UPNUL/2013/51445
ISSN. 2277-5854

Type Setting :
Vishal Computers, Jaipur.

Printer :
Starline, Sonarpura, Varanasi

Price : 125/-

Note : Any dispute arising on articles published in this issue shall be decided under the jurisdiction of Varanasi Court only.

विषय-सूची

सम्पादकीय

शोधलेख

1.	कुलकुण्डलिनी चिन्तन : विभिन्न आयाम	म.म. देवर्षि कलानाथ शास्त्री	1-4
2.	अथर्ववेदे शक्तितत्त्वविमर्श:	डॉ. द्विजेन्द्रनाथमिश्र:	5-8
3.	शक्तिसाधनविधे: लोककल्याणप्रयोजनानि	डॉ. नारायणहोसमने	9-12
4.	*देवी भागवतपुराण* में शक्ति साधना	पण्डित बालकृष्ण कौशिक	13-17
5.	निगमागमतन्त्र में साधनाविधि ,न्यास ,मन्त्रों के प्रकार व मन्त्र अवस्थाओं का विवेचन	डॉ. लक्ष्मीनारायण शास्त्री	18-23
6.	शक्ति तत्त्व एवं ज्योतिष साहित्य में उपासना	डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा	24-27
7.	काश्मीर शैव दर्शन में स्पन्दशक्ति	श्रीमती प्रतिभा मुद्गल	28-34

8.	सन्तमत में कुण्डलिनी शक्ति का विवेचनात्मक स्वरूप	डॉ. आदित्य आङ्गिरस	35-42
9.	कुण्डलिनीयोगः सिद्धान्त एवं विधि	डॉ. अनुराग शुक्ल	43-51
10.	गीता में पञ्चमहाभूत की ब्रह्मरूपता की साधना एवं पर्यावरण संरक्षण का दिव्य दर्शन	डॉ. राजेन्द्रप्रसाद शर्मा	52-59
11.	तन्त्रागमीय सूर्य विमर्श : एक दृष्टि	डॉ. शीतलाप्रसाद पाण्डेय	60-82
12.	प्रतिभा एवम् कुण्डलिनी योग की अभिन्नता	डॉ. आशुतोष आङ्गिरस	83-94
13.	आधुनिक चिकित्साविज्ञान की दृष्टि में कुण्डलिनीः अवचेतन शक्ति सामर्थ्य	डॉ. श्रीगोपाल काबरा	95-100
14.	तन्त्रागमे षट्चक्रविवेचनम्	पूरणचन्द्रजोशी	101-104

सम्पादकीय

श्रीविद्यामन्त्रमहायोग का नवीन अङ्क प्रस्तुत है। सौभाग्य का विषय है कि गत वर्ष परमपूज्य गुरुदेव की असीम अनुकम्पा से उनके जन्मोत्सव पर आयोजित शोध-संगोष्ठी 'शक्तिसाधना' के अवशिष्ट लेख इस अङ्क में प्रस्तुत है तथा इस वर्ष आयोजित 'कुण्डलिनी साधना' विषयिका संगोष्ठी (11-12 जनवरी, 2016) के कतिपय आलेख ही यहाँ प्रकाशित हो रहे हैं। शेष आलेख अग्रिम अगस्त अङ्क में समायोजित किये जायेंगे। अग्रिम सत्र में 'त्रिपुरासुन्दरी साधना' विषय पर राजस्थान विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र विभाग में संगोष्ठी आयोजित करने का निश्चय किया है जिसमें सभी साधक एवं लेखक आमन्त्रित है।

इस अङ्क में प्रथम आलेख देवर्षि कलानाथ शास्त्रीजी के द्वारा सुलिखित है जिसमें कुण्डलिनी के वैदिक आगमिक तथा योगदर्शन के आधारों के अन्वेषण एवं समन्वय का मार्ग निर्दिष्ट हुआ है। इस विषय में अभी गम्भीर अनुसन्धान की आवश्यकता का प्रतिपादन भी किया है जो साधकों के लिये मननीय उपदेश है।

द्वितीय आलेख में वैदिक अध्येता डॉ. द्विजेन्द्रनाथ मिश्र ने अथर्ववेद के आधार पर शक्ति तत्त्व का विमर्शन प्रस्तुत किया है। कतिपय बीजमन्त्रों के अर्थानुसन्धान का मार्ग भी प्रदर्शित किया है। विविध उपनिषदों के प्रमाणिक वचनों को उद्धृत करके महती कृपा की है।

तृतीय आलेख में वैदिक विद्वान् डॉ. नारायण होसमने ने शक्तिसाधना विधि के लोककल्याणकारी प्रयोजन को सुस्पष्ट किया है जिसमें वैदिक आधारों पर आगमिक साधना का सामञ्जस्य प्रस्तुत किया है जो सर्वथा स्तुत्य है।

चतुर्थ आलेख में पण्डित बालकृष्ण कौशिक ने देवी भागवत में वर्णित शक्ति साधना विधि को प्रामाणिक रूप में प्रतिपादित किया है जिसमें कुण्डलिनी जागरण के विधि को पौराणिक आधार पर सुस्पष्ट किया गया है।

पञ्चम आलेख में मन्त्र योग के अङ्कों का न्यासविधान के साथ वर्णन करते हुए शास्त्रीय ग्रन्थों के आधार पर कतिपय मन्त्र साधना विषयक तत्त्वों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

शक्तितत्त्व, उपासना एवं ज्योतिष के सम्बन्ध को सुस्पष्ट करने का प्रयास अग्रिम लेख 'शक्तितत्त्व एवं ज्योति साहित्य में उपासना' में डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने रमणीय रूप में किया है।

'काश्मीर शैव दर्शन में स्पन्दशक्ति' विषयक आलेख में शोध छात्रा प्रतिभा मुद्गल ने स्पन्द शक्ति का शास्त्रीय विवेचन प्रामाणिक रीति से सुस्पष्ट किया है। अष्टम आलेख 'सन्तमत में कुण्डलिनी का विवेचनात्मक स्वरूप' में होशियारपुर के प्रसिद्ध साधक डॉ. आदित्य आङ्गिरस ने हिन्दी में लिखित

कुण्डलिनी विषयक सन्त साहित्य को प्रामाणिक रूप में उद्धृत करके उसकी संस्कृतशास्त्रमूलकता को सुस्पष्ट किया है जो सर्वथा नवीन तथ्यों से अवगत कराता है।

नवम आलेख में डॉ. अनुराग शुक्ल ने कुण्डलिनी विषयक अनेक शास्त्रों को गम्भीर अध्ययन करके कुण्डलिनी के स्वरूप को स्पष्ट करने का महनीय प्रयास किया है। इनके द्वारा प्रतिपादित तथ्य तन्त्र जिज्ञासुओं एवं साधकों के लिए सर्वथा मननीय है तथा इस पत्रिका से जुड़ने के कारण विशेष साधुवाद के पात्र भी।

दशम आलेख 'गीता में पञ्चमहाभूत की ब्रह्मरूपता की साधना एवं पर्यावरण संरक्षण का दिव्य दर्शन' में पञ्चमहाभूतों के देवत्व की सुप्रतिष्ठा शास्त्रीय आधार पर की गई है।

'तन्त्रागमीय सूर्यविमर्श' विषय एकादश निबन्ध में गम्भीर शोध अध्येता डॉ. शीतलाप्रसाद पाण्डेय ने साक्षात् देवता भगवान् सूर्य की उपासना का आधार विविध ग्रन्थ एवं परम्पराओं के आधार पर सुस्पष्ट किया है। सौर उपासना से सम्बन्धित समग्र ग्रन्थों के गहन अनुसन्धान से यह निबन्ध प्रस्तुत किया गया है जो सूर्य के वैदिक, पौराणिक एवं आगमिक स्वरूप को सुस्पष्ट करने के कारण सर्वथा वन्द्य है। आदित्य की उपासना की समन्त्रक विधि भी विस्तार से विवेचित हुई है जो सूर्य के पूर्ण ब्रह्मता को सर्वथा सुस्पष्ट करती है।

तन्त्र एवं साहित्य के मर्मज्ञ एवं सुप्रथित विद्वान् डॉ. आशुतोष आङ्गिरस ने अपने आलेख 'प्रतिभा एवं कुण्डलिनी योग की अभिन्नता' में इन दोनों तत्त्वों की समानता तथा अद्वयता को प्रामाणिक एवं शास्त्रीय आधार पर सुस्पष्ट किया है जो इनके गम्भीर अध्ययन का सुपरिणाम है। यह लेख नूतन शैली में प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ इनका सचित्र वर्णन भी था। स्थानभाव के कारण जिसे हम अङ्क में नहीं दे पाये हैं, जो अगले अङ्क में प्रकाशित किया जायेगा।

त्रयोदशवें लेख 'आधुनिक चिकित्साविज्ञान की दृष्टि में कुण्डलिनी : अवचेतन शक्ति सामर्थ्य' में जयपुर के सन्तोकबा दुर्लभ अस्पताल के प्रख्यात चिकित्सक डॉ. श्रीगोपाल काबरा ने कुण्डलिनी विषयक चिकित्साशास्त्रीय अनुसन्धान प्रस्तुत कर साधकों का महान् उपकार किया है। उन्होंने शरीर संरचना के अवयवों का सचित्र साङ्गोपाङ्ग विवेचन निबन्ध के प्रथम भाग में किया है तथा अपर भाग में उसके अवचेतन शक्ति सामर्थ्य के रहस्य के मार्ग का भी उद्घाटन करने का अद्भुत अनुसन्धान किया है, सर्वथा वन्दनीय है। 'रेटीक्यूलर फार्मेशन' के आधार पर अवचेतन मस्तिष्क की असीम शक्तियों का कुण्डलिनी शक्ति के साथ समन्वय प्रदर्शित किया है।

अन्तिम आलेख में श्रीविद्यासाधक वैदिक पूरणचन्द्र जोशी ने तन्त्रागम के षट्चक्रों के स्वरूप तथा उपासना के फल को सुस्पष्ट करने का प्रयास किया है।

यह अङ्क न केवल अभूतपूर्व एवं महत्त्वपूर्ण सामग्री को साधकों को उपलब्ध कराता है अपितु तन्त्रशास्त्र के नये-नये अनुसन्धान से उनके ज्ञान को परिवर्द्धित भी करता है। हमें विश्वास है कि साधक वर्ग में इस अ का भी यथापूर्व स्वागत होगा तथा यह उनके लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

कुलकुण्डलिनी चिन्तन : विभिन्न आयाम

म. म. देवर्षि कलानाथ शास्त्री

कुण्डलिनी (अथवा कुलकुण्डलिनी) एक ऐसी रहस्यात्मक संज्ञा है जो विभिन्न साधनामार्गों से सम्बद्ध है और जो शताब्दियों से तन्त्र, योग आदि रहस्यात्मक साधनाओं का विशिष्ट आधार रही है। इस पर विभिन्न अभिगमों के अधीन बड़े ज्ञानवर्धक अध्ययन भी हुए हैं। प्राचीनकाल से ही साधना की सफलता के लिए 'कुण्डलिनी का जागरण' करना एक विशिष्ट ध्येय रहा है। बताया यह जाता है कि मानवशरीर में मूलाधार स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा— ये जो छह चक्र हैं अर्थात् नाडी संस्थान हैं जिन्हें आधुनिक विज्ञान प्लेक्सस (Plexus) नाम से पुकारता है (जिसका अधिकृत भारतीय पर्याय जालक या तन्त्रजालक) उनके ऊपर मानव मस्तिष्क भाग में सहस्रदल कमल है। कुण्डलिनी मानवशरीर में स्वाधिष्ठान और मणिपूरचक्र के बीच में स्थित नाडी है जो साँप की तरह कुण्डली मारकर बैठी लगती है अत: कुण्डलिनी कही जाती है। इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा आदि नाडियाँ भी मानवशरीर में होती हैं। उनके माध्यम से कुण्डलिनी में स्थित चैतन्य शक्ति को जागृत् कर सहस्रदल कमल तक पहुँचा देना साधना की उत्कृष्ट परिणति मानी गई है।

यह आधारभूत सिद्धान्त तन्त्रशास्त्र को भी मान्य है, योग को भी। इनमें पारस्परिक समन्वय कब हुआ यह भी रुचिकर अध्ययन का विषय है औरआज का विज्ञान कुण्डलिनी की इस अवधारणा को किस रूप में देखता है यह भी। प्रसन्नता की बात है कि पिछले दिनों कुण्डलिनी के इन तीनों आयामों पर अध्ययन, अनुशीलन आदि होते रहे हैं। जयपुर के चिकित्सक, आयुर्विज्ञान-विशारद एवं साहित्यकार डॉ. श्रीगोपाल काबरा ने कुण्डलिनी की कायवैज्ञानिक स्थिति को भी स्पष्ट किया है और प्राचीन अवधारणाओं से उसका समन्वय भी किया है। इस प्रकार तीनों अभिगमों से कुण्डलिनी की परख होने लगी है, तान्त्रिक, यौगिक और कायवैज्ञानिक।

वस्तुत: साधना के समय, ध्यान द्वारा, आटोसजेशन द्वारा निम्न भाग में स्थित कुण्डलिनी को प्रेरित करना तन्त्र और योग दोनों में मान्य प्रक्रिया है जिसे आधुनिक विज्ञानवेत्ता न्यूरोट्रांसमिटर की प्रक्रिया जागृत करना कहते हैं। जिस प्रकार आधुनिक विज्ञान ने षट् चक्रों को प्लेक्सस के रूप में स्पष्ट कर दिया है लगभग उसी तरह न्यूरोट्रांसमीटर माध्यम से इफेक्टिव वोलीशन (Effective Volition) जैसी प्रक्रिया से मानसिक साधना करने को भी विज्ञानानुमोदित कहा है।

वेदों में

वैसे मूलाधार और स्वाधिष्ठान के बीच में स्थित सर्पाकार किसी तन्त्रिका या शक्ति की अवधारणा के संकेत वेदों में भी तलाशे जा सकते हैं। *तैत्तिरीय संहिता* में कुछ मन्त्र हैं जिनमें प्रार्थना की गई है कि नर्य देवता हमारे परिवार की रक्षा करे, अथर्व देवता हमारे खाद्य पदार्थों की रक्षा करे, सप्रथ देवता हमारे सहकर्मियों की रक्षा करे आदि। इसी में कहा गया है कि जड़ में, मूल में, अन्तस्तल में निवास करने वाला वह सर्प हमारी मन्त्रसाधना की रक्षा करे जो हमें सिद्धि दे सके।

अहे बुध्निय मन्त्रं मे गोपाय। यमृषय यी विदो विदुः।
ऋचः सामानि यजूंषि। सा हि श्रीरमृता सताम्।।

यहाँ बुध्निय अहि का अर्थात् जड़ में, अन्तस्तल में बैठे साँप का संकेत किया गया है। यह कुण्डलिनी का संकेत ही प्रतीत होता है।

इसमें शब्दशास्त्र के काम की यह बात भी स्पष्ट होती है कि किसी भी पात्र के नीचे के हिस्से का (जो जमीन को छूता है) नाम अलग था और ऊपर का वह हिस्सा जिसमें चीज रखी जाती है, पानी रखा जाता है ऊपर का Bottom.। यह आश्चर्यजनक सत्य है कि Bottom शब्द हमारे वैदिक शब्द बुध्न से निकला है जो ग्रीक में Boden होकर गया, अंग्रेजी में Bottom हो गया। संस्कृत में बुध्न शब्द अल्पज्ञात रह गया। केवल बुध्निय अहि शब्द से पुराणों ने 'अहिर्बुध्न्यः' शब्द बनाया जो एक नाम ही हो गया। *अहिर्बुध्न्य संहिता* उस नाम पर बन गई। यह एक मनोरंजन अध्ययन का विषय है।

इससे यह अनुमान स्पष्ट हो जाता है कि वेदों में भी नीचे बैठे (शरीर के मूलाधार के पास) सर्पाकार किसी भाग की अवधारणा थी जो मन्त्र की रक्षा करता था। साधना में काम आता था।

योग और तन्त्र में

योग में और तन्त्र में कुण्डलिनी के महत्त्व का कारण तो स्पष्ट ही है। तन्त्र की साधना का चाक्षुष आधार जिस प्रकार यन्त्र है, वाचिक आधार मन्त्र है उसी के साथ मानसिक मनन प्रक्रिया भी आवश्यक है जिसके बिना मन्त्र की सिद्धि नहीं हो सकती। इस मानसिक साधना की आन्तरिक प्रक्रिया का भौतिक आधार शरीर में स्थित नाडियाँ, शिराएँ आदि ही तो हो सकती है। इनमें ऊर्ध्वस्थ नाडियों को शारीरिक प्रयत्न से, संप्रेषण से प्रेरित नहीं किया जा सकता। अपेक्षाकृत निम्न भाग में स्थित नाडियाँ और शरीराङ्ग आपके प्रेरित करने से, जोर लगाने से, प्रयास करने से, स्पन्दित हो सकते हैं। स्वाधिष्ठान और मूलाधार चक्र को मानव प्रारम्भ से ही स्पन्दित करता रहा है। उनके निकट स्थित कुण्डलाकार नाड़ी का प्रथम स्पन्दन ऊर्ध्वगमन के द्वारा अनेक सत्परिणाम दे सकता है, ध्यान का, धारणा का, मनोनियन्त्रण का प्रारम्भ ऐसे प्रयत्नों से ही होता है जिसे अंग्रेजी में इफेक्टिव वोलीशन कहा जा सकता है। कुण्डलिनी नाड़ी या शक्ति ऐसे स्पन्दन का प्रथम आधार

बन सकती है। इसलिए तान्त्रिक साधना में सदियों से इसका महत्त्व माना जा रहा है। तन्त्र शास्त्र के ग्रन्थों में भी यह महत्त्व वर्णित है तथा जॉन वुडरफ जैसे उन पाश्चात्य मनीषियों के ग्रन्थों से भी, जिन्होंने तन्त्रशास्त्र का गहन अध्ययन कर *'गारलैंड ऑफ लैटर्स'*, *'द सर्पेंट पावर'* आदि महत्त्वपूर्ण आधार ग्रंथ अंग्रेजी में लिखे, कुण्डलिनी की सर्पाकार आकृति और शक्ति पर उनमें पूरा विवरण देखा जा सकता है। कुछ समय पूर्व मोतीलाल बनारसीदास द्वारा प्रकाशित एक अंग्रेजी ग्रंथ *'कुण्डलिनी'* नाम से भी मेरे देखने में आया था।

योग की तो परिभाषा ही 'चित्तवृत्ति निरोध' है। चित्तवृत्तियों का नियन्त्रण मानसिक प्रक्रियाओं से तो होता ही है, वाचिक, शारीरिक आदि प्रक्रियाएँ भी उसके लिए अत्यावश्यक हैं। आसन, प्राणायाम आदि शारीरिक प्रक्रियाएँ तथा ध्यान, धारणा आदि मानसिक एवं मन्त्रोच्चारण आदि वाचिक प्रक्रियाएँ योग साधना में अनिवार्य रूप से प्रयुक्त होती हैं। कुण्डलिनी आस-पास स्थित चक्रों के भौतिक प्रेरणा से योग की मानसिक आधारभूमि बनती है, उसी से ध्यान, धारणा और निदिध्यासन सिद्ध होते हैं। इस दृष्टि से तन्त्र की कुण्डलिनी का महत्त्व योग में भी समाहित हो गया। यही कारण है कि पिछले दिनों योग के क्षेत्र के अनेक लेखकों ने कुण्डलिनी से सम्बद्ध प्रभूत लेखन किया है। आशा है अनुशीलन की यह प्रक्रिया सतत वर्तमान और वर्धमान रहेगी।

कुण्डलिनी जागरण जैसी साधना का महत्त्व तन्त्र में तो सदियों से सुविदित है ही, इसे रहस्यात्मक रखा गया, वह बात अलग है। योग उतना गोपनीय नहीं माना जाता जितना तन्त्र अत: जब से योग में षट्चक्रों और कुण्डलिनी की अवधारणा ने साधनों के चिन्तन को प्रेरित किया, कुण्डलिनी की साधना का प्रसार भी हुआ, अनुशीलन भी। जैसा ऊपर सूचित किया गया है इन दो आयामों के अतिरिक्त शारीरतन्त्र के अध्येताओं ने भी इस पर अनुशीलन प्रारम्भ किया। आवश्यकता इस बात की है कि इन तीनों आयामों का समन्वयात्मक अध्ययन हो।

ध्यान

यह समन्वयात्मक अध्ययन नये मार्ग खोल सकता है। तत्त्व और योग तो 'कुण्डलिनीशक्ति को रहस्य के पर्दे में ही रखते रहे हैं जो स्वाभाविक है। वे तो इसका ध्यान बड़े रहस्यात्मक ढंग से करते हैं—

आधारे परदेवता भवनतोऽध: कुण्डली देवता,
देवानामधिदेवता त्रिजगतामानन्दपुञ्जस्थिता।
मूलाधारनिवासिनी त्रिरमणी या ज्ञानिनी मालिनी,
सा मे मातृमनुस्थिता कुलपथानन्दैकबीजानना।।

इसका ध्यान कर नीचे से ऊपर की गति को प्रेरित कर क्रमशः छहों चक्रों का भेदन कर सहस्रार तक पहुँचना ही सिद्धि है यह योग भी कहता है, तन्त्र भी। इसके प्रकार भी समझाए गए हैं जो रहस्यात्मक हैं।

जयपुर निवासी डॉ. राधेश्याम परमहंस योगविद्या के ज्ञाता और अनेक ग्रन्थों के लेखक हैं। उन्होंने जो ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं उनमें एक है *'षट्चक्र ध्यानयोग'*। इसमें छहों चक्रों का, कुण्डलिनी का, योग का, साधना का जो स्वरूप और जो प्रक्रिया बताई गई है वह भी इस पर प्रकाश डालती है कि किस प्रकार तन्त्रशास्त्र और योगदर्शन का पारस्परिक समन्वय गत शताब्दियों में होता रहा है। इस ग्रन्थ में मूल संस्कृत टेक्स्ट विस्तार से बीस पटलों में दिया गया है, हिन्दी भाष्य भी, विधि भी।

जब से भारत का योग विश्वभर में 'योगा' बनकर फैला है, विश्वभर के लगभग दो सौ देशों के समर्थ से 21 जून विश्वजनीन रूप से 'योग दिवस' घोषित हो गया है तब से योग पर प्रत्येक क्षेत्र में व्यापक रूप से विमर्श, लेखन और प्रकाशन होने लगे हैं। वैसे उनका जोर आसन, प्राणायाम, कपालभाति आदि कुछ प्रक्रियाओं पर ही अधिक है किन्तु उस प्रक्रिया से प्रारम्भ कर कुण्डलिनी जागरण, षट्चक्रभेदन, सहस्रार प्रवेश आदि साधना प्रकारों तक भी यदि हमारा विश्लेषण पहुँचे तो अनेक नए तथ्य उजागर हो सकते हैं।

राजस्थान विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के उच्चतर अध्ययन संस्थान द्वारा कुण्डलिनी जैसे विषय पर आयोजित राष्ट्रीय विद्वद् गोष्ठी ने इस प्रकार के नए क्षितिजों की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है और उसके सत्परिणाम भी प्राप्त हुए हैं, यह हर्षप्रद है।

पीठाध्यक्षः, आधुनिकसंस्कृतपीठ,
जगद्गुरुरामानन्दाचार्यराजस्थानसंस्कृतविश्वविद्यालये
राष्ट्रपतिसम्मानितः, भूतपूर्वोऽध्यक्षः, राजस्थानसंस्कृतअकादम्या
निदेशकचरश्च संस्कृतशिक्षा- भाषाविभागयो राजस्थानसर्वकारीययोः
सी-8 पृथ्वीराज रोड, जयपुरम्-302001

अथर्ववेदे शक्तितत्त्वविमर्शः

डॉ. द्विजेन्द्रनाथमिश्रः

वेदाः भारतीयसंस्कृतेः प्राणाः सन्ति। ऋग्यजुःसामाथर्वनाम्ना वेदाश्चत्वारो विद्यन्ते। समस्ततन्त्रविद्यानामुपजीव्यत्वेन वेदा एव सन्ति। कस्यचिदपि कार्यस्य सम्यङ् निष्पादनाय साधनसाध्यसाधनानाञ्चापेक्षा भवति। समस्तपदार्था ये कार्यनिष्पत्तौ भवन्त्युपकारकाः साधनत्वेनाभिधीयन्ते। साधनसाधनयोः सम्यग्ज्ञानद्वारा साधकः साध्यमवाप्नोति। मनः वशीकर्तुमभ्यासस्य नाम साधना अस्ति। भगवता पतञ्जलिना मनः वशीकर्तुं चतस्रः साधनाः निगदिताः तासु 'मन्त्रयोगः' प्रथमा साधना अस्ति। अस्याः साधनायाः षोडश (16) अङ्गानि[1] विद्यन्ते तानि च भक्तिः शुद्धिः, आसनं, पञ्चाङ्गसेवनम्, आचारः, धारणा, दिव्यदेशसेवनम्, प्राणक्रिया, मुद्रा, तर्पणम्, हवनम्, बलिः, यागः, जपः, ध्यानं, समाधिरितिनामभिर्ज्ञायन्ते।[2] साधकसाध्यसाधनेष्वभेदबुद्धिर्योग इत्युच्यते। बारं बारं मन्त्राणामावृत्तिर्जप निगद्यते। मानसिकः उपाशुः वाचिकः इति भेदेन जपस्त्रिविधः कथितः। मनसा मन्त्रोच्चारणम् मानसिकः जप उच्यते। किञ्चिदोष्ठरसनयोश्चालनपूर्वकं मन्त्रोच्चारणमुपांशुजपः कथ्यते। वाचा मन्त्रोच्चारणम् वाचिक उच्यते। *गौतमीयतन्त्रे* निगदितं यत् यः साधकः स्तोत्राणि मनसा पठति तथा च वाचा मन्त्रान् उच्चारयति। सः किञ्चित्फलं न प्राप्नोति।[3] काम्यप्रयोगेषु केवलं मारणप्रयोगे वाचा मन्त्रा उच्चार्यन्ते। एतदिरिक्तं मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं मुद्राश्च यो न जानाति सः शतकोटिसंख्याकान् मन्त्रान् जप्त्वापि सिद्धिं न प्राप्नोति। त्वरया जपकरणेन व्याधिः, शनैः शनैः जपकरणेन च सम्पत्तिनाशो जायते। सुप्तो मन्त्रः सिद्धिप्रदो न भवति। चैतन्यमन्त्रजपेन सर्वा सिद्धिः प्राप्यते।

तन्त्रशास्त्रेषु कथितं यत् सिद्धादिशोधनं, मन्त्रार्थः, मन्त्रचैतन्यं, मन्त्राणां कुल्लुका, मन्त्रसेतुः, महासेतुः, निर्वाणः, मुखशोधनम्, प्राणयोगः, दीपनी, मन्त्राणां सूतकानि, मन्त्राणां दोषाः तन्निवृत्युपायाश्चैतेषाम् ज्ञानं सर्वेभ्योऽनिवार्यं विद्यते। एतज्ज्ञानं विना मन्त्राः शत्रुवद् भवन्ति।[4]

मन्त्राः न केवलं वर्णानाम् सङ्कलनरूपाः सन्ति। ते देवाभिन्नत्वात्तेषां स्वरूपं बोधयन्ति। साधकानां ज्ञानार्थं केषाञ्चिद् बीजमन्त्राणामर्था निगद्यन्ते—ह्रीं=ह्=शिवः, र्=प्रकृतिः, ई=महामाया, नादः=विश्वमाता, बिन्दुः=दुःखहरणम्। सशिवा विश्वमाता शक्तिः मम दुःखानि दूरीकरोतु।

ऐं=ऐ=सरस्वती, बिन्दुः=दुःखहरणम् अस्य सरस्वतीबीजमन्त्रस्यार्थो विद्यते यत् सरस्वती मम दुःखानि नाशयतु।

क्लीं—क्=कृष्णः काली वा, ल्=इन्द्रो लोकपालो वा, ई=महामाया, अनुस्वारः=सुखकर इत्थं भगवान् कृष्णः महामाया काली वेति मह्यं सुखं ददातु।

श्रीं=श्=महालक्ष्मीः, र्=धनसम्पत्तिः, ई=तुष्टिः, नादः अनुस्वारः=विश्वमाता सुखकरश्च धनसम्पत्तितुष्टि-पुष्टीनां देवी महालक्ष्मी मह्यं सुखं ददातु।

दूं=द्=दुर्गा, ऊ=रक्षा, बिन्दु:=दु:खहरणम् अनेन अर्थो जायते—माता दुर्गा मम दु:खान्यपहरतु।

एतत्सर्वं *मन्त्रमहोदधिशारदातिलकरुद्रयामलादिग्रन्थेषु* विशदं वर्णितमस्ति। सम्प्रति *अथर्ववेदे* किमस्ति शक्तितत्त्वनिरूपणमिति धिया कृते विचारे स्पष्टतामेति यदत्रापि शक्तितत्त्वस्य बृहद्विवेचनमस्ति। वेदेषु *अथर्ववेद* एवेदृग्वेदो विद्यते यत्र लोककल्याणभावनया शक्तितत्त्वस्य विवेचनं कृतो वर्तते। पृथिवी, [5] विद्युत्, [6] यातुधानी, [7] द्यावापृथिवी, [8] अप्सरस:, [9] अदिति:, [10] रात्रि:, [11] सरस्वती[12] इत्यादीनि नामानि समुपलभ्यन्ते। एता: सर्वा: देव्य: शक्तेरेव विभिन्नानि रूपाणि विद्यन्ते। तत्तन्मन्त्रेषु शक्तिस्वरूपिणी: एता: देवी: सुखशान्ती याचिते स्त:। न हि एतावता।

अथर्ववेदस्य शौनकसंहितायाम् अनेकेषु मन्त्रेषु अन्यासां शक्तिस्वरूपिणीनाम् देवीनां विवेचनं प्राप्यते तद्यथा—यमिनि, [13] गाव:, [14] राष्ट्रीदेवी, [15] लक्ष्मी:, [16] इत्यादीनि शक्तेर्नामानि *अथर्वसंहितायां* निगदितानि। आसां शक्तीनां तन्त्रादिग्रन्थेषु बृहद्रूपेण निरूपणं कृतं विद्यते।

'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'[17] इति कथनानुसारं ब्राह्मणानामपि वेदेषु परिगणनं विद्यते। उपनिषद्ग्रन्था अपि वेदेषु समायान्ति। अथर्ववेदस्य अनेका उपनिषद्: शक्तितत्त्वविवेचका: सन्ति। तेषु *देव्यथर्वशीर्ष:, सरस्वत्युपनिषत्, नारायणाथर्वशिर उपनिषद्, नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्, शाण्डिल्योपनिषद्, महोपनिषत्, अन्नपूर्णोपनिषत्, भावनोपनिषत्, तुलस्युपनिषत् नारायणपूर्वतापिनीयोपनिषत्, कामराजकीलितोद्धारोपनिषत्, कालिकोपनिषत्, कालीमेधादीक्षितोपनिषत्, वनदुर्गोपनिषत्, षोढोपनिषत्, सुमुख्युपनिषत्, हंसषोढोपनिषत्* इमा उपनिषदोऽथर्ववेदस्य विद्यन्ते यातु शक्तितत्त्वस्य बृहदनिरूपणं प्राप्यते।

अन्नपूर्णोपनिषदि प्रोक्तं यत् अन्नपूर्णा देवी नित्या आनन्दस्वरूपा निराधारा विलसत्कचा विष्टपेशी[18] स्वरूपयुता अस्ति सैव महालक्ष्मीरिति निगद्यते।

हे भगवति! अन्नपूर्णे! मह्यमन्नमभिलषितं च देहि। 'ऐं ह्रीं सौं श्रीं क्लीं ॐ नमो भगवत्यन्नपूर्णे ममाभिलषितं देहि स्वाहा'[19] इति मन्त्रेण यो नर: अन्नपूर्णामुपास्ते तस्य गृहे कदाचन धनधान्यादीनामभावो न भवति।

देव्यथर्वशीर्षे (देव्युपनिषदि) शक्तितत्त्वस्योत्तमं विवेचनं विद्यते। अत्र देवी कथयति यत् मत्त: प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत् विद्यते। विज्ञानाविज्ञाने, ब्रह्मा ब्रह्मणी, पञ्चभूतानि अपञ्चभूतानि, अविद्याविद्या अहमेवास्मि। यस्या: परतरं नास्ति तस्माद् देवी दुर्गेति[20] कथ्यते। दुर्गात् सन्त्रायते यस्माद्देवी दुर्गेति कथ्यते। 'प्रपद्ये शरणं देवीं दुं दुर्गे दुरितं हर' इति धिया य: साधको दुर्गां भजते। सर्वाणि दु:खानि तस्य विनश्यन्ति।

सरस्वतीरहस्योपनिषदि देव्या: सरस्वत्या अत्युत्तमं स्वरूपं वर्णितमस्ति। अस्य द्रष्टा भगवान् आश्वलायनो विद्यते। अत्रोक्तं यत् सर्वप्रथमं विनियोगोऽनुष्ठेय: तद्यथा—अस्य श्री सरस्वतीदशश्लोकीमहामन्त्रस्य आश्वलायन ऋषि:, अनुष्टुप् छन्द: श्रीवागीश्वरीदेवता, यद्वागिति बीजम् देवीं वाचमिति शक्ति:, प्रणो देवीति कीलकम् तत्प्रीत्यर्थे विनियोग:। ॐ प्रणो देवीत्यस्य मन्त्रस्य भरद्वाज ऋषि: गायत्री छन्द: श्रीसरस्वतीदेवता प्रणवेन बीजशक्ति: कीलकम् इष्टार्थे विनियोग इति सरस्वतीरूपशक्तितत्त्वस्य अनेके विनियोगमन्त्रा:, न्यासा:, ध्यानमन्त्रा:, निगदिता: सन्ति।

सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषदि शक्तितत्त्वस्यानेकानि रूपाणि बोधितानि सन्ति तेषु श्रीः लक्ष्मीः विष्णुपत्नी, वसुप्रदा, हिरण्यरूपा, स्वर्णमालिनी, रजतस्रजा स्वर्णप्रभा, स्वर्णप्रकारा, पद्मवासिनी, पद्महस्ता, पद्मप्रिया, मुक्तालङ्कारा, चन्द्रसूर्या, बिल्वप्रिया ईश्वरी भुक्तिः मुक्तिः विभूतिः ऋद्धि समृद्धि कृष्टिः पुष्टिः धनदा, धनेश्वरी, श्रद्धा, भोगिनी, भोगदा, सावित्री, धात्री, विधात्री[21] इति नामानि शक्तेरेव निर्दिष्टानि। सौभाग्यलक्ष्म्या इमान्येव रूपाणि तन्त्रागमादिग्रन्थेषु विशदं वर्णितानि सन्ति। यासाम् सम्यगुपासनया साधकः स्वाभीष्टमवाप्नोति।

गोपीचन्दनोपनिषदि प्रोक्तं यत् गोपी का? का नाम संरक्षणी? कुतः संरक्षणी? लोकसय नरकात् संरक्षणात् मृत्योर्महाभयाच्च गोप्यो नाम विष्णुपत्न्यस्तासां चन्दनम् आह्लादनम्। कश्चाह्लाद एष ब्रह्मानन्दरूपः। काश्च विष्णुपत्नयो गोप्योनाम जगत्सृष्टिस्थित्यन्तकारिण्यः प्रकृतिमहदमाद्या महामायाः। कश्च विष्णुः परं ब्रह्मैव[22] विष्णुरित्यादिना शक्तेरेव वर्णनं कृतम्।

तुलस्युपनिषदि शक्तिरूपायाः तुलस्या अत्युत्तमं वर्णनं कृतमस्ति अत्रोक्तं यत् ब्रह्माथर्वप्राणां कल्पहस्तां पुराणपठितां विष्णुवल्लभाम् अमृतोद्भवां मृत्युजन्मनिबर्हणीं दर्शनात्पापनाशिनीम् अमृतरसमञ्जरीम् अनन्ताम् अनन्तभोगप्रदां स्पर्शनात् पावनीं अभिवन्दनात् रोगनाशिनीं सेवनात् मृत्युनाशिनीं वैकुण्ठार्चनात् विपद्हन्तीं प्रादक्षिण्याद्दारिद्र्यनाशिनीम् शक्तिरूपां तुलसीं सेवेत स वैष्णवो[23] भवति।

नारायणपूर्वतापिनीयोपनिषदि शक्तिस्वरूपविषये कथितं यत् श्रीमहामायाप्रकृतिसर्वमेकजननीलक्ष्मीर्भवति। इयं देवानां देवलक्ष्मीर्भवति। सिद्धानां सिद्धलक्ष्मीर्भवति। मुमुक्षूणां मोक्षलक्ष्मीर्भवति। योगिनां योगलक्ष्मीर्भवति। मुनीनां विवेकबुद्धिर्भवति। राज्ञां राज्यलक्ष्मीर्भवति। सृष्टिरूपा सरस्वती भवति। स्थितिरूपा महालक्ष्मीर्भवति। संहाररूपा रुद्राणी भवति। तिरोधानकरी पार्वती भवति। अनुग्रहरूपा उमा भवति। पञ्चकृत्यरूपा परमेश्वरी भवति। एतस्या उपासनायै अत्रैव ॐ श्रीलक्ष्म्यै[24] नमः इति सप्ताक्षरो मन्त्रः बोधितः। एतदतिरिक्तमत्रैव बोधितं यत् इयं सर्वेषामेव भूतानां महासौभाग्यदायिनी वर्तते। इयमेव सर्वलोकैकमोहिनी अस्ति। सर्ववेदस्वरूपिणी साम्राज्यदायिनी विद्यते। इयमेव महाविद्या जगन्माता मुनीनां मोक्षदायिनी ज्ञानिनां ज्ञानदा दानवानां विनाशिनी अस्ति। इयं महालक्ष्मीर्मूलप्रकृतिर्भवति।[25]

राधोपनिषदि राधैव मूलशक्तिरिति निगदिता। तत्रोक्तं, श्रीकृष्ण एव महाविष्णुः। तस्य आद्या प्रकृती राधिका अस्ति। सा नित्या निर्गुणा सर्वालङ्कारशोभिता प्रसन्नाशेषलावण्यसुन्दरी विद्यते। अस्मादादीनां जन्म तदधीनम्। अस्यांशाद् बहवो विष्णुरुद्रादयो[26] भवन्ति। इत्थमथर्ववेदे शक्त्येरत्युत्तमविवेचनं विहितं विद्यते, अस्योपासनया साधकः स्वाभीप्सितं प्राप्नोति।

सन्दर्भाः

1. भवन्ति मन्त्रयोगस्य षोडशाङ्गानि निश्चितम्।
यथा सुधांशोर्जायन्ते कला षोडशशोभना।। — *मन्त्रमहोदधि* प्रस्तावना, पृ. 17

2. भक्तिः शुद्धिश्चासनं च, पञ्चाङ्गस्यापि सेवनम्।
आचारधारणे दिव्यदेशसेवनमित्यपि।।
प्राणक्रिया तथा मुद्रा तर्पणं हवनं बलिः।
यागो जपस्तथा ध्यानं समाधिश्चेति षोडशः।। — *मन्त्रमहोदधि*, प्रस्तावना, पृ. 18
3. *मन्त्रमहोदधि*, प्रस्तावना, पृ. 28; उद्धृतम्
4. साधकं नाशयेन्म : नास्ति मन्त्रसमो रिपुः।
— *योगिनीहृदयतन्त्रे*, *मन्त्रमहोदधि*, पृ. 31; प्रस्तावनायामुद्धृतमिदम्
5. *अथर्वसंहिता* 1/2/1, 12/1/1-63
6. तत्रैव 1/13/1
7. प्रतिदह यातुधानान् प्रतिदेव किमीदिनः।
प्रतीची कृष्णवर्तने संदध्यातुधान्यः।। — *अथर्वसंहिता* 1/28/2
8. तत्रैव 1/32/1
9. तत्रैव 2/2/5
10. तत्रैव 7/6/1-4, 7/8/1
11. तत्रैव 19/47-50/1-9
12. तत्रैव सरस्वति व्रतेषु ते. *अथर्वसंहिता* 7/68/1-3
13. *अथर्वसंहिता*, 3/28/4
14. तत्रैव 4/21/1-7
15. तत्रैव 4/30/1-8
16. लक्ष्मीर्बलं बले *अथर्वसंहिता* 11/7/1-27
17. *आपस्तम्बधर्मसूत्रम्।*
18. नित्यानन्दा निराधारा विख्याता विलसत्कचा।
विष्टपेशी महालक्ष्मीः कामस्तारो नतिस्तथा।। — *उपनिषत्संग्रह*, *अन्नपूर्णोपनिषद्* 73/1
19. *अन्नपूर्णोपनिषत्* (*उपनिषत् संग्रहः*) 73, पृ. 541
20. *देव्युपनिषत्* (*उपनिषत् संग्रहः*) 84, पृ. 542
21. *उपनिषत्संग्रहः* (*सौभाग्योपनिषत्*), पृ. 654
22. *गोपीचन्दनोपनिषत्* (*उपनिषत्संग्रहः*) उत्तरार्द्ध, पृ. 67
23. *तुलस्युपनिषत्* (*उपनिषत्संग्रहः*) उत्तरार्द्ध, पृ. 71
24. *नारायणपूर्वतापिनीयोपनिषदि* (द्वितीयः खण्डः), पृ. 74
25. तत्रैव
26. उपनिनिषत्

वरिष्ठव्याख्याता 'अथर्ववेदे'
राज. म. आ. सं. म. वि. गांधीनगरम्
जयपुरम् 302015 (राजस्थानम्)

शक्तिसाधनविधेः लोककल्याणप्रयोजनानि

डॉ. नारायणहोसमने

यो देवानां प्रथमं पुरुस्ताद्विश्वाधियो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्तु।।

— *कृष्णयजुर्वेदसंहिता*

स्थावरजङ्गमात्मकं जगदिदं प्रजापतेः आदिपुरुषस्य तपस्साधनाफलमेव वरीवर्ति। सर्गादौ सृष्ट्यर्थम् महानात्मा तपस्तेपे। तस्य प्रजापतेस्तपसा शक्तेः सञ्चयात् तस्मात् महात्मनः सृष्टेः समारम्भोऽभूदिति वैदिक श्रुतिः। उक्तञ्च—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः।। आकाशाद्वायुः।। वायोरग्निः।। अग्नेरापः।।
अद्भ्यः पृथिवी।। पृथिव्या ओषधयः।। ओषधीभ्योऽन्नम्।। अन्नात्पुरुषः। इत्यादि।

किन्तु तत्र महामायास्वरूपेण परमपुरुषमपि चिच्छक्तिरूपेण सा आदिशक्तिरेव प्रेरयतीति, तथा च सा स्वीयशक्त्या एव त्रिभुवनव्यापिनी विविधशक्तिस्वरूपिणीति श्रुतयः, एवं नानापुराणानि चोद्घोषयन्ति। तस्याः पराशक्तेः नैकशक्तिमत्त्वबोधका श्रुतय एताश्च—**इन्द्रो मायाभिः पुरुषरूप ईयते।। अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्। अहमेव वानमिव प्रवाम्या...**।। इत्यादि। तथा च—

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।। इत्यादि।

अतः सा पराशक्तिरेव परमात्मानं जगद्बीजपुरुषमपि प्रेरयति। विश्वोत्पत्तावपि परम्ब्रह्मणो व्याजेन सा शिवाश्रिता शिवस्य प्रेरयित्री धर्मरूपा चिच्छक्तिः। नित्यस्वरूपिणी सा परमेश्वरस्य शक्तिव्यतिरेकेन न बुद्ध्यादिकरणापेक्षा च भवति। सा पराशक्तिरेव तस्य परमेश्वरस्य परापेक्षं रूपम्। तयोः शिवशक्त्योरात्मनोरभेदः एकात्मताभावः पुराणादिषु बहुत्र कीर्तितोऽपि धर्मिधर्मभेदेन उपासनादिषु तयोर्भेदान्वयः अस्ति। उक्तञ्च—

मननात्सर्वभावानां त्राणात्संसारसागरात्।
मन्त्ररूपा हि तच्छक्तिः मननत्राणधर्मिणी।।

पुनश्च *योगशिखोपनिषदि* श्रयूते यत्—

मननात् प्राणनाच्चैव मद्रूपस्यावबोधनात्।
मन्त्रमिच्यते ब्रह्मन् मदधिष्ठानतोऽपि वा।। इति।

अस्माकं वैदिकहिन्दूसनातनसंस्कृतेराधारभूता: प्रसिद्धा: ऋग्यजुस्सामाथर्वाख्याश्चत्वारो वेदा:। ते च वेदा: सकलधर्मतत्त्वानां मूलरूपा: सन्ति। उक्तश्च मनुस्मृतौ—

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।।

तस्य भगवत: वेदक्य मूलशक्तिरूपेण जगत: सृष्टिकारिणी, जडजङ्गमात्मकप्रपञ्चस्य पलिनी एवं प्रलयकारिणी च सा जगन्माता महामाया पराशक्तिरेवाऽस्ति। अत एव साऽपि ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका इत्युच्यते। प्रसिद्धे *ऋग्वेदीयदेवीसूक्ते* भगवत्या विराट्शक्तिस्वरूपवर्णनमुपलभ्यते। न केवलमपि तु चतुर्ष्वपि वेदेषु अनेकानि पराशक्तिमहिमानवर्णनपराणि सूक्तानि समुपलभ्यन्ते। उपनिषद्ग्रन्थेष्वपि बहुत्र महामायाया वर्णनं, तस्या: निर्गुणब्रह्मस्वरूपवर्णनपरा: आख्यायिका अपि प्राप्यन्ते। तत्र देवीसूक्ते भगवता ब्रह्मर्षिणा वागम्भृणिना दृष्टे, साक्षाद् भगवती स्वकीयवर्णनं कथयति। जगति त्रयस्त्रिंशत् संख्याकेषु देवेषु यथा रुद्रेभिर्वसुभिश्च चरामि, नाम रुद्राणां देवानामन्न: शक्तिरूपेणाहं चरामि, तेषामन्त: शक्तिरूपेण अहमेव सर्वत्र व्याप्तोस्मि, इति, तथा च प्रसिद्धै: द्वादशसंख्याकैरादित्यै: तथा विश्वेदेवदेव संज्ञकदेवानाश्च अन्त: अहमेव व्याप्तास्मि। मित्रावरुणसंज्ञकानि देवान् अहमेव धारयामि, इन्द्राग्नी संज्ञकावपि मदाश्रयेणोपजीवन्ति। एवश्चाश्विनौ देवावपि अहमेव धारयामि। एवं मन्स्वरूपे अद्वितीये परब्रह्मणि एव सर्वं जगदिदं शुक्तौ रजतं यथा अध्यारूपेण भवति तद्वत् इदंजगत् सर्वं व्याप्तमस्तीति साक्षाद् भगवती कथयति। पुनश्च—

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनाम्...।

इत्यस्मिन् मन्त्रेऽपि सा भगवती अहमेव राष्ट्री नाम ईश्वरी जगत: अस्मि, नाम जगति नत्किमपिसत्वं भावश्च नत् सर्वमपि ममैवांशोऽस्तीति दृढीकरोति। तत्र भगवानपि आह गीतायाम्ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:।

मन: षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्—सर्वत्र श्रौतस्मार्तादि यज्ञेष्वपि ब्रह्मस्वात्मतया साक्षात् कुर्वती सति अहमेव यज्ञसम्पादकानां बहुप्रधानतया मुख्यतया अस्मि। पुनश्च—

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति य: प्राणति य ईक्षणोत्युक्तम्।

अत्रापि भगवती जगति स्थावरजङ्गमात्मके जगति सर्वेषु जीवेषु श्वासोच्छ्वासक्रियारूपेण प्राणदात्री, एवं समस्त प्राणिजातस्य अन्नस्वरूपा अदनस्वरूपा चास्ति इति। नाम अन्नदात्री अपि सा एव भोक्त्री अपि

अहमेवास्मीति, तथा यत्किमपि पश्यायोक्यं तत् सर्वमपि पराशक्तः रूपमेवेति सा उद्घोषयति। एवं अष्टर्चात्मकेऽस्मिन् सूक्ते भूर्भुवैःस्वरात्मके लोकत्रयेऽपि सर्वत्र अण्डपिण्डब्रह्माण्डेषु सर्वत्र जगदम्बिकाया व्याप्तिमत्वस्य वर्णनं तस्या पराशक्तेः महत्त्वं प्रमाणयति।

भगवता वेदेन सर्वत्र शक्तेः वर्णनानि विहितानि सन्ति। तत्र अध्यात्मवादिभिः ब्रह्मविद्यारूपेण शक्तेः महिमानं कृतमस्ति। *केनोपनिषदि* ब्रह्मविद्यास्वरूपिण्याः हैमवती मायाः वर्णनमायाति। तत्र सा स्वयमेव ब्रह्मस्वरूपिणी अहमस्मीति ब्रूते। अतश्च—

केनेषितं पतति प्रेषितः मनः ...इत्युपक्रम्य...मस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीं ता होवाच किमेतद्यक्षमिति।। सा ब्रह्मेति होवाच।। (5/4/2/3)**इति।**

तत्र *देव्यथर्वशीर्षे* अपि पराम्बायाः सर्वत्र सप्तलोकेषु, समस्तभूतेषु अणुरेणुतृणकाष्ठादिषु सम्पूर्णतया व्याप्तिवर्णनं श्रूयते। सैव अखिल जगतः पापानां निवारिणी तपस्विनामुपकारिणी दुष्टानां ध्वंसिनी, धर्मार्थकाममोक्षाख्य चतुर्वर्गफलप्रदायिनीं भवतीति श्रूयते। उक्तं च—

सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः काऽसि त्वं महादेवीति।। अहं ब्रह्मस्वरूपिणी।। मन्त्रः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्।। अहं विज्ञाना विज्ञाने।। अहं ब्रह्मा ब्रह्मणी वेदितव्ये।। अहं पञ्चभूतान्यपञ्च भूतानि। अहमखिलं जगत्।। इत्यादि।।

समस्त योगतन्त्रादिविद्यासु सा एव पराशक्तिः मूलतया वर्णिता अस्ति। तत्र तन्त्रागमादिषु रुद्रयामलादिषु तन्त्रेषु यथा शिवस्य तन्त्राणि अनुष्ठानेषु भवन्ति तथैव पार्वत्याश्च उपासनाविधयश्च अनुष्ठानेषु विनियुज्यन्ते। शिवस्य च शक्तेश्च अन्योन्यतया अनुष्ठानानि आगमन्तन्त्रेषु प्रवर्तन्ते। अतः सा शक्तिस्तु मायास्वरूपिणी तथा शङ्करस्तु मायाया प्रेरणया सर्वं जगत् विधास्यति इति श्रूयते। उक्तञ्च *श्वेताश्वतरोपनिषदि*—

मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्।। (20/4)

मायायाः प्रेरणया एव ईश्वरः सृष्टिस्थितिप्रलयादिकमपि कर्तुं समर्थो भवतीति भगवानाद्यशङ्कराचार्यः *सौन्दर्यलहर्याख्ये* तन्त्रग्रन्थारम्भे स्फुटतरमुद्घोषयति। उक्तंश्च—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं,
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां विधिहरिर्विरञ्च्यादिभिरपि,
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृत पुण्यः प्रभवति।। इति।

वैदिकसम्प्रदाये यद्यपि श्रौतस्मार्तयज्ञानुष्ठानानि जपाभिषेकहोममार्जनब्राह्मणभोजनादि पुरश्चरणविधयश्च सर्वत्र लोके अनुष्ठीयन्ते+तत्र सर्वत्र वाग्बीजाधिष्ठात्री परम्बाया: अनुग्रह: एव परमं कारणं भवति। यद्यपि निविघ्नतया कार्यसमाप्तये विघ्नेश्वरस्य पूजनं भवति, तत्रापि गौरीगणेशाभ्यां मिलित्वा एवं पूजनसम्प्रदाय: भवति। यज्ञानुष्ठानेषु पञ्चाङ्गपूजनेष्वपि भूमिपूजनम्, मातृकापूजनादिकम्, कुलदेवतामाश्च पूजनादिकं भवत्येव। अनुष्ठानेषु मातृकान्यास:, अङ्गन्यासादय: सर्वथा अनिवार्यतया विधीयन्ते। सर्वश्रौतस्मार्तादि अनुष्ठानेषु पूर्वं सर्वै श्रत्विग्भि: विप्रवृन्दै: प्रत्यहं निष्कारणेन सायम्प्रन्त: माध्यन्दिनसन्ध्यानुष्ठानमनिवार्यतया विहितमस्ति। तत्र भगवत्या: गायत्र्या उपासनम् अनिवार्यतया अनुष्ठीयते। गायत्री एव भगवती जगन्माता विराजते। यद्यपि 'असावादिन्यो ' इति सूर्याय जलं मन्त्रपूतं प्रक्षिपन्ति तत्रापि गायत्रीजपे सूर्यमण्डलमध्यस्थां गायत्रीमेव स्मरन्ति। गायत्री एव भगवती वेदमाता इति प्रसिद्धा। उक्त*श्चाथर्ववेदे*—

स्तुतामया वरदा वेदमाता प्रचोयन्ती द्विजानाम्।
आयुं प्रजां पशु कीर्तिं द्रविणं ब्रह्म वर्चसम्।
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।।

अत: विप्रै नियमिततया गायत्रीजपानुष्ठानै: अखिलजगत: कल्याणं भवति। शम्।।

सहायकाचार्य.
जगद्गुरुरामानन्दराजस्थानसंस्कृतविश्वविद्यालय, मदाऊ,
भांकरोटा, जयपुरम् (राजस्थानम्) 302026

देवी भागवतपुराण में शक्ति साधना

पण्डित बालकृष्ण कौशिक

सृष्ट्वाखिलं जगदिदं सदसत्स्वरूपं,
शक्त्या स्वया त्रिगुणया परिपाति विश्वम्
संहृत्य कल्पसमये रमते तथैका
तां सर्वविश्वजननीं मनसा स्मरामि।।

— *देवी भागवत*, 1-2.5

भगवती जगदम्बिका आद्या शक्ति के रूप में सदैव परब्रह्म की अधिष्ठात्री शक्ति या प्रकृति के रूप में शास्त्रों में परमवन्द्या रही है। इसे पुरुष व प्रकृति के रूप में कहें या शिव व शक्ति के रूप में मानें, चाहे लक्ष्मी व विष्णु या राधा-कृष्ण या सीता-राम या सरस्वती व ब्रह्मा के रूप में सुसंज्ञित करें, मूलत: प्रकृति पुरुष को हमें मनुशतरूपा या अर्द्धनारीश्वर के रूप में ही समझना होगा। 'एकोऽहं बहुस्याम्' सबसे पहले शिव शक्ति के रूप में ही परिणत होंगे, तभी सृष्टि रचना का विकास होगा।

देवी भागवत के तृतीय स्कन्ध के छठे अध्याय में देवी कहती है—मैं और परब्रह्म एक ही हैं, कोई भेद नहीं है, जो वे हैं वही मैं हूँ। मैं ही बुद्धि, धृति, कीर्ति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा, क्षमा, कान्ति, शान्ति, पिपासा, निद्रा, तन्द्रा, जरा, अजरा, अविद्या, स्पृहा, वाञ्छा, शक्ति, अशक्ति, वसा, मज्जा, त्वचा, दृष्टि, सत्यासत्य वाणी, परा, मध्या, पश्यन्ती आदि वाणी के भेद व विभिन्न प्रकार की नाड़ियाँ मैं ही हूँ।

इसी अध्याय में आद्या शक्ति ब्रह्मा को सृष्टि रचना हेतु महासरस्वती, विष्णु को सृष्टि पालन हेतु महालक्ष्मी एवं शिव को संहार लीला हेतु महाकाली स्वरूप प्रदान करती हुई अपने सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक प्रकृति द्वारा सगुणा एवं निर्गुणा स्वरूप का वर्णन करती है।

वस्तुत: इसी तत्य को आदिशङ्कराचार्य ने *देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र* में साङ्केतिक विधि से कहा है—

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो,
जटाधारी कण्ठे भुजङ्गपतिहारी पशुपति:।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं,
भवानी त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम्।।

इसीलिए देवताओं ने भी तारकासुर वध हेतु शिव शक्ति संयोग को आवश्यक समझा।

बहुधा शक्तिसाधना में वैदिक एवं तान्त्रिक दोनों विधि-विधान से शुद्धोच्चारण की महत्ता प्रतिपादित की गई है, परन्तु तृतीय स्कन्ध के एकादशाध्याय में सत्यव्रत मुनि सत्याव्रताख्यान में कहा गया है कि भगवती उपासना में बीज मन्त्रों का विशेष महत्त्व है, यहाँ तक कि उनके अशुद्ध उच्चारण से भी भगवती **'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'** आदिशङ्कराचार्य के भावानुसार कल्याण ही करती है। मूलत: वाग् बीज (ऐं), कामराज (क्लीं) व मायाबीज (ह्रीं) परम कल्याणकारक हैं। परन्तु सत्यव्रत मुनि ने किसी घायल सूअर को अपने आश्रय में आया देखकर करुणा से बिन्दुरहित बीजमन्त्र (ऐ-ऐ) का उच्चारण करने से भी मूर्ख ब्राह्मण बालक सत्यव्रत में समस्त विद्याएँ हृदय में स्वत: प्रस्फुटित हो गईं। जब शिकारी ने मुनि से घायल सूअर को दृष्टादृष्ट के बारे में प्रश्न किया तो भगवती कृपा से सद्याशुविद्यालब्ध प्रत्युत्पन्नमति सत्यभाषण व्रती सत्यव्रत ने क्या सुन्दर उत्तर दिया—

या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति।
अहो व्याध स्वकार्यार्थिन् किं पृच्छसि पुन: पुन:।।

— *देवी भागवत* 3-11-41

सम्भवत: गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी सत्यव्रताख्यान के इसी श्लोक के आधार पर पुष्पवाटिका प्रसङ्ग में रामलक्ष्मणदर्शनोपरान्त सीताजी की सखि के मुख से यह चौपाई कही—

गिरा अनयन नयन बिन बानी, कैसे शोभा कहूँ सयानी।

इस प्रसङ्ग से यह स्पष्ट है कि शक्ति साधना में अस्पष्ट उच्चारण, अशुद्ध उच्चारण भी कल्याणकारक है जिस प्रकार शुद्धौषधी के स्थान पर न्यूनशुद्धोषधि भी किञ्चिद् कल्याण ही करती है यद्यपि, शुद्धोच्चारण व शुद्धौषधी का महत्त्व तो निर्विवाद है ही परन्तु देवता भावग्राहका माँ तो स्वपरायण सन्तान की तोतली वाणी से भी मुग्ध ही होती है। यह सर्वदृष्ट स्वत: प्रमाण है।

महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का बहुश्रुत काव्य *'राम की शक्ति पूजा'* का भी प्रेरणास्रोत देवी भागवत के तृतीय स्कन्ध का तीसवाँ अध्याय ही है, जहाँ सीताहरण पश्चात् शोकसन्तप्त रामचन्द्रजी को देवर्षि नारद नवरात्र व्रत की विधि बताते हुए देवी पूजा की विधि बताते हैं। कहा—हे काकुत्स्थ! वैदेही पूर्वजन्म में तपस्विनी मुनि कन्या थी जिसने रावण की कुदृष्टि डालने पर भूतल से अगर्भा कन्या प्रकट होकर वंश विनाश का शाप दिया। सीता रावण की अशोक वाटिका में निराहार रही थी, क्योंकि इन्द्र ने स्वयं कामधेनु का अमृतमय दुग्ध एक पात्र में सीता जी के लिए भेजा था जिससे सीता क्षुधा-तृषा रहित जीवित रह सकती है। नारद जी के बताये विधि-विधान से राम-लक्ष्मण ने आश्विन नवरात्रि में पीठासीनाम्बिका स्थापित कर उपवासपूर्वक पूजन-हवन करके भगवती को प्रसन्न किया, देवी ने देवांश वानर व शेषांश लक्ष्मण के सहयोग से विजयी होने का वरदान दिया। तत्पश्चात् श्रीराम ने दशमी को पुन: विजय प्राप्त कर विजयापूजन किया।

नवरात्र व्रत विधान (शारदीय व वासन्तीय नवरात्रि)

समतल भूमि में षोडशहस्तात्मक स्तम्भध्वजायुक्त मण्डपनिर्माण, श्वेतमृतिका व गोमयोपलिप्त हो, मण्डप के मध्य चतुर्हस्तात्मक-हस्तोच्च वेदी बनाएँ। मधुपर्कार्ध्यादि द्वारा प्रातःकाल सुयोग्य विप्रवरण हो। नव-पञ्च-त्रय या एक विप्र द्वारा स्वस्तिवाचनपूर्वक चतुर्भुजाधारी भगवती की सिंहवाहिनी प्रतिमा दिव्याभूषणालङ्कृत व पूजित हो, पूजक उपवास व्रती, नक्तव्रती या एकभुक्तव्रती हो। ससङ्कल्प मन्त्रोच्चारणपूर्वक प्रतिदिन पूजन करे। चन्दन, कपूर, अगर, मन्दार, करञ्ज, अशोक, चम्पा, कनैल, मालती, ब्राह्मी आदि पुष्पों द्वारा, बिल्वपत्र एवं धूप-दीप से पूजन करे। नारियल, बिजौरा नीम्बू, दाडिम, केला नारंगी, कटहल, बिल्वफल एवं अन्न का नैवेद्य व पवित्र बलि अर्पित करें। त्रिकोण कुण्ड में हवन करें। इस प्रकार त्रिकाल पूजा करें। भूमिशायी रहकर नित्य एक कुमारी कन्या का पूजा या वृद्धिक्रम से पूजा में, एक वर्ष की कन्या पूजा हेतु निषिद्ध है। द्विवर्षीया कन्या, त्रिवर्षीया त्रिमूर्ति, चतुवर्षिणी कल्याणी, पञ्चवर्षीया रोहिणी, षड्वर्षिणी कालिका, सप्तवर्षीया चण्डिका, अष्टवर्षीया शाम्भवी, नववर्षीया दुर्गा व दशवर्षीया सुभद्रा कहलाती हैं। दारिद्र्य विनाशार्थ कुमारी पूजन, धर्मार्थकाम व पुत्रपौत्रादि हेतु त्रिमूर्ति पूजन, विद्याविजयार्थ कल्याणी, शत्रुविनाशार्थ कालिका, ऐश्वर्याभिलाषी चण्डिकापूजन, सम्मोहन व संग्राम विजयार्थ शाम्भवी, क्रूरोग्र कर्म हेतु दुर्गा, मनोरथसिद्धि हेतु सुभद्रा व रोगनाश हेतु रोहिणी पूजन करें।

कुमारस्य च तत्त्वानि या सृजत्यपि लीलया
कादीनपि च देवास्तां कुमारीं पूजयाम्हम्। (3, 26, 53)

पञ्चस्कन्ध के 34वें अध्याय में सुमेधा मुनि द्वारा देवी पूजा विधान में श्वेतवस्त्र परिधायी होकर ताम्रपात्र पर श्वेत चन्दन से षट्कोण एवं अष्टकोण यन्त्र पूजा में नवार्ण मन्त्रपूजन विधान बताया गया है। वहाँ नवाक्षर जप, दशांश हवन, तदशांश तर्पण व तदशांश ब्राह्मणभोजन विधान बताया है। नवरात्रव्रताक्षमार्थ अष्टमी व्रत या सप्तम्यष्टमीनवमी का त्रिरात्रव्रत विधान भी लिखा है। नवरात्रि व्रत की पारणा दशमी को करें।

देवी भागवत के सप्तम स्कन्ध में 35वाँ अध्याय भगवती द्वारा यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि (अष्टाङ्ग योग) एवं कुण्डली जागरण की विधि बताई गई है।

(1) यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, सरलता, क्षमा, धृति, परिमिताहार तथा शौच (10 यम) कहे हैं।

(2) नियम—तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान, देवपूजन, शास्त्रश्रवण, लज्जा, सद्बुद्धि, जप तथा हवन (10 नियम) कहे हैं।

(3) आसन—पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन, वीरासन कहे हैं।

(4) प्राणायाम—16 प्रणवोच्चारण (ॐ) इडा नासिका (वाली) नासिका द्वारा श्वासग्रहण पूरक कालपर्यन्त, 64 प्रणवोच्चारण पर्यन्त सुषुम्णामध्य श्वासावरोधक कुम्भक, 32 प्रणवोच्चारण पर्यन्त पिङ्गला नाड़ी द्वारा (दाईं) रेचक करना चाहिये। इस प्रकार 112 (ॐ पर्यन्त) प्रारम्भ में 12 बार तदुपरि 16 क्रमशः वृद्धि; सगर्भ प्राणायाम—इष्ट जप ध्यान सहित प्राणायाम; अगर्भ प्राणायाम—इष्ट जप ध्यान रहित प्राणायाम कहा है।

प्राणायामें में स्वेदोत्पन्न अधम, कम्पन्नोत्पत्ति मध्यम व जमीन छोड़कर ऊपर उठना उत्तम प्राणायाम है।

(5) प्रत्याहार—इन्द्रियों के स्वच्छन्द विचारण को बलपूर्वक रोकना।

(6) धारणा—अङ्गूठा, ऐड़ी, घुटना, जङ्घा, गुदा, लिङ्ग, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कण्ठ, भ्रूमध्य व मस्तकादि 12 स्थानों में विधिपूर्वक प्राणायाम धारण किए रखना।

(7) ध्यान—चेतन आत्मा में मन को स्थित करके एकाग्रचित होकर अपने भीतर अभीष्ट देवी/देवता का सतत चिन्तन।

(8) समाधि—जीवात्मा व परमात्मा में नित्य समस्वभाव रखना। पञ्चभूतात्मक शरीर में सोम-सूर्याग्नि अर्थात् चन्द्र-सूर्याग्नि के तेजयुक्त होने पर जीव ब्रह्म की एकता होती है।

कुण्डलिनी जागरण

शरीर में साढ़े तीन करोड़ नाड़ियों में 10 मुख्य हैं, उनमें भी चन्द्रस्वरूपिणी श्वेत इड़ा, मेरुदण्ड के बाईं ओर स्थित है, शक्तिस्वरूपा इड़ा नाड़ी अमृतस्वरूपिणी है। दाईं ओर पुरुषरूपिणी सूर्य मूर्ति पिङ्गला नाड़ी है। उनके मध्य अग्निरूपिणी सुषुम्ना नाड़ी सर्वतेजोमयी है। उसके भीतर विचित्रा नाड़ी है। उसके अन्दर इच्छाज्ञान क्रियाराशि सम्प करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी स्वयंभू लिङ्ग है। उसके ऊपर बिन्दुनाद (ँ) सहित हरात्मा (हकार, रेफ व ईकार युक्त) माया बीज (ह्रीं) विद्यमान है। उसके ऊपर रक्तविग्रह वाली शिखा के आकार की कुण्डलिनी है।

कुण्डलिनी जागरण विधि

(1) कुण्डलिनी के बाह्य भाग में स्वर्णपर्ण के चतुर्दल कमल में मूलाधार का ध्यान करना चाहिए जहाँ (व श ष स) चार बीजाक्षर हैं।

(2) उसके ऊपर छः दल वाला स्वाधिष्ठान पद्म स्थित है, जो अग्नि के समय तेजोमय व हीरे की चमक वाला है। (ब भ प य र ल) छः बीजाक्षर से युक्त आधार षट्कोण पर स्थित होने के कारण व परम लिङ्ग को इङ्गित करने के कारण स्वाधिष्ठान संज्ञक है।

(3) नाभिदेश में मेघ तथा विद्युत के समान कान्तिवाला तेजोयुक्त मणिसदृश मणिपूरक चक्र मणिपद्म भी कहलाता है। दस दलों युक्त (ड ठ ण त थ द ध न प फ) दशाक्षर समन्वित विष्णु अधिष्ठित दर्शन साध्य है।

(4) उसके ऊपर उगते हुए सूर्य के समान प्रभासम्पन्न अनाहत पद्म है। बारह पत्रों से प्रतिष्ठित (क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ) वर्ण युक्त चक्र है। दस हजार सूर्यों के समक्ष बाणलिङ्ग है। बिना किसी आघात के इसमें शब्द होते हैं। मुनियों द्वारा इसे शब्द ब्रह्ममय पद्म अनाहत चक्र कहा गया है।

(5) उसके ऊपर सोलह दलयुक्त विशुद्ध कमल महतीप्रभा युक्त धूम्रवर्ण वाला है। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः सोलह स्वरयुक्त हंसस्वरूप परमात्मा के दर्शन से जीव विशुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त होता है। इस विशुद्ध पद्म या चक्र को आकाश चक्र भी कहते हैं।

(6) उसके ऊपर परमात्मा द्वारा अधिष्ठित आज्ञाचक्र दो दलों वाला (ह, क्ष) वर्णयुक्त अत्यन्त मनोहर है।

(7) उसके ऊपर कैलाश चक्र एवं उसके ऊपर रोधिनी नामक चक्र स्थित है। उसके ऊपर सहस्रदलों से सम्पन्न सहस्रार चक्र है।

कुण्डलिनी जागरण हेतु पूरक प्राणायाम से मूलाधार में मन लगाये, तत्पश्चात् गुदा व मेढ्र के मध्य वायु द्वारा कुण्डलिनी शक्ति समेटकर उसे जाग्रत् करना चाहिए। पुनः लिङ्गभेदन क्रम में स्वयम्भूलिङ्ग से आरम्भ करके कुण्डलिनी शक्ति को सहस्रार तक (बिन्दुचक्र) तक ले जाना चाहिए। वहाँ पराशक्ति का सहस्रार में स्थित परमेश्वर शम्भु के साथ ऐक्य भाव से ध्यान करना चाहिए। वहाँ द्रवीभूत लाक्षारस के समान अमृत तत्त्व योगसिद्ध प्रदान करने वाली उस मायाशक्ति को पान कराकर षट्चक्र में स्थित देवताओं को उस अमृतधारा से सन्तृप्त करें।

इसके बाद बुद्धिमान् साधक उस मार्ग से कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार तक वापस लौटा लाए। इससे साधक दूषितमन्त्र भी सिद्ध कर सकता है। जरा-मरण-दुःख भव बन्धन से मुक्त हो जाता है। भगवती जगदम्बा से उसका तादात्म्यीकरण हो जाता है। चित्त की मलिनता से शीघ्र सिद्ध न हो तो भगवती के स्वरूपाङ्गों को चित्त में एक-एक करके चिन्तन करे व मन स्थिर करे। जब तक सिद्ध न हो जप होम के द्वारा मन्त्राभ्यास जारी रखे।

योग के बिना मन्त्र सिद्ध नहीं होता है न मन्त्र के बिना योग। दीपक के प्रकाश से अन्धकारमय घर में स्थिर घड़ा दिखाई देता है ऐसे ही माया से आवृत आत्मा मन्त्र के द्वारा दृष्टिगोचर होती है। जो गुरुकृपा से ही सम्भव है।

प्राध्यापक,
राजकीय उच्चमाध्यमिक विद्यालय,
सरदारशहर (राजस्थान)

निगमागमतन्त्र में साधनाविधि, न्यास, मन्त्रों के प्रकार व मन्त्र अवस्थाओं का विवेचन

डॉ. लक्ष्मीनारायण शास्त्री

भारतीय संस्कृति में मन्त्रों का महत्त्व वैदिककाल से अत्यन्त प्रचलित रहा है। *जैमिनि सूत्र* 2/1/33-35 के अनुसार मन्त्र दो प्रकार के बतलाये गये हैं। **वैदिकास्तान्त्रिकाश्च** अर्थात् वैदिक मन्त्र एवं तान्त्रिक मन्त्र। वैदिक मन्त्रों में भी दो भेद होते हैं। **प्रगीत** (गेय) तथा **अप्रगीत** (अगेय)। प्रगीत मन्त्र *सामवेद* में निहित हैं। सामवेदीय मन्त्रों को गेय पद्धति से उच्चारित किया जाता है जबकि अप्रगीत (अगेय) मन्त्रों के भी दो भेद होते हैं। छन्दों में बँधे हुए वैदिक मन्त्रों को ऋचाएँ कहते हैं और जो मन्त्र छन्दों से भिन्न अथवा छन्द रहित है उन्हें यजुष् कहा जाता है। इसका प्रमाण जैमिनि सूत्र 2/1/33-35 में प्राप्त होता है।

इन मन्त्रों की जहाँ वाक्य में अर्थ के अनुसार चरणों की व्यवस्था होती है उसे ऋक्, जहाँ गीतियों में अर्थात् गान के प्रकारों की व्यवस्था होती है उसे साम नाम दिया गया है तथा जहाँ न पाद व्यवस्था है न गान व्यवस्था जहाँ केवल स्वराधारित है उसे यजु: के नाम से जाना जाता है।

आगम तन्त्र में मन्त्रों को तीन प्रकार का कहा गया है—

पुंस्त्रीनपुंसकात्मानो मन्त्र: सर्वे समीरिता:।
मन्त्रा: पुंदेवता श्रेया विद्या: स्त्रीदेवता: स्मृता:।।

— *शारदातिलक*, द्वितीयपटल-58

अन्य ग्रन्थों में कहा गया है कि—

स्त्रीपुंनपुंसकत्वेन त्रिविधा: मन्त्रजातय:।
स्त्रीमन्त्रा वह्निजायान्ता नमोऽन्ता: स्युर्नपुंसका:।।
शेषा पुंमासस्ते शस्ता: सिद्धा वश्यादिकर्मणि।।

अर्थात् कामिक, कारण, प्रपञ्चादि आगमों में जिन जिन मन्त्रों का प्रयोग किया है वे तान्त्रिक मन्त्र हैं। तन्त्रशास्त्र में भी मन्त्रों को तीन प्रकार का कहा गया है—स्त्रीलिङ्ग, पुल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग। मन्त्रों का लिङ्ग निर्धारण होने के कारण मन्त्रों की तीन जातियाँ सिद्ध होती हैं तथा लिङ्ग अनुसार मन्त्रों का प्रभाव प्राप्त होता है। कभी-कभी लाखों मन्त्रों के जाप करने पर फल प्राप्त नहीं होता। इसका कारण यह है कि जिन जिन

मन्त्रों के अन्त में 'स्वाहा' शब्द रहे वह स्त्रीलिङ्ग है, स्वाहा शब्द (अग्नि की पत्नि) के लिए स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त है, जिनके अन्त में 'नमः' शब्द है वे नपुंसक मन्त्र हैं तथा अवशिष्ट मन्त्र पुल्लिङ्ग (पुरुष) अर्थात् पुरुषार्थी हैं। आगमतन्त्र में पुरुषार्थी मन्त्रों का जाप करना ही सर्वश्रेष्ठ है अर्थात् आगमतन्त्र के षट्कर्म विधानों में भी पुरुषार्थी मन्त्रों के जाप करने से अभीष्ट कार्य की सिद्धि बतायी गयी है। मन्त्र शास्त्रों में विभिन्न देवी-देवताओं के मन्त्र पाये जाते हैं, परन्तु मन्त्रों के जाप, अनुष्ठान, पूजा करने से पूर्व यह आवश्यक है कि मन्त्रों का संस्कार किस प्रकार किया जाये। आगमशास्त्र के *शारदातिलक* नामक ग्रन्थ में मन्त्रों के दस प्रकार के संस्कार बताये गये हैं—

जननं जीवनं पश्चात् ताडनं बोधनं तथा।
तथाभिषेको विमलीकरणाप्यायने पुनः।।
तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्र संस्क्रियाः।।
मन्त्राणां मातृकायन्त्रादुद्धारो जननं स्मृतम्।
प्रणवान्तरितां कृत्वा मन्त्रवर्णाञ्जपेत्सुधीः।।

— *द्वितीयपटल* 112-114

अर्थात् जनन, जीवन, ताडन, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन, गोपनादि दस संस्कार मन्त्रों के होते हैं। साधकों को मन्त्रों के दस संस्कारोपरान्त ही जाप, अनुष्ठानादि करने चाहिए। संस्कारोपरान्त मन्त्रों का किया गया अनुष्ठान पूर्णरूप से फलदायी एवं कल्याणकारी होता है।

मन्त्रों की संस्कार विधि

साधकों को किसी भी मन्त्र को ग्रहण करने के साथ उसकी संस्कार विधि को गुरुमुख से अवश्य जानना चाहिए। उपर्युक्त मन्त्रों के दस सिद्धिदाता संस्कार आगमतन्त्र में वेदोक्त रीति से कहे गये हैं। मातृकायन्त्र (मन्त्र अक्षरों का बना हुआ यन्त्र) से मन्त्रों का उद्धार करना जनन संस्कार होता है तथा मन्त्रों के अक्षरों को प्रणव (ॐकार) से घेरकर (मध्य में प्रणव रख कर) मन्त्र के वर्णों की संख्या के अनुसार जाप करना चाहिए इसे जीवन संस्कार कहते हैं अर्थात् किसी मन्त्र में जितने वर्ण (अर्ण) हों, जप की संख्या भी उतनी ही होगी। जैसे—'नमः शिवाय' इस मन्त्र में पाँच वर्ण हैं, तो जप भी पाँच बार ही करना है। प्रत्येक अक्षर के बार प्रणव देना आवश्यक है। जैसे—'ॐन ॐमः ॐशि ॐवा ॐय' इस विध से जप करने पर मन्त्र का जीवन संस्कार हो जायेगा। इस प्रकार मातृका यन्त्र वर्णों का बना हुआ एक य होता है जिसमें अक्षरों का न्यास अथवा स्थापन होता है। इसी विधि से मन्त्रों के अन्य ताड़न, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन, गोपनादि संस्कार करने से मन्त्र व अनुष्ठान शक्तिप्रद एवं सिद्धिदाता होते हैं, जो कि साधकों के लिए हितकारी दश संस्कार माने गये हैं।

आगमतन्त्र के न्यास का वैज्ञानिक शास्त्रीय आधार

आगमतन्त्र के न्यास के आठ प्रकार बताये गये हैं। किसी भी मन्त्र अथवा देवता का अनुष्ठान करने से पूर्व मन्त्र का (देवता) ज्ञातकर मन्त्र का संस्कार करना चाहिए, संस्कारोपरान्त मन्त्र के जाप की संख्या निर्धारण कर उस देवता अथवा मन्त्र का न्यास करना चाहिए तदुपरान्त ध्यान। आगमत में न्यास के आठ प्रकार निम्न प्रकार से हैं—

1. मातृकान्यासः—समस्त स्वर और वर्णों का होता है।

2. मन्त्रन्यासः—सम्पूर्ण मन्त्र का होता है। मन्त्र के पदों का मन्त्र के एक-एक अक्षर का न्यास अनुष्ठान के अनुसार मन्त्र न्यास करना चाहिए।

3. देवतान्यासः—देवता के शरीर के बाह्य और आभ्यन्तर अङ्गों का स्मरण देवतान्यास कहलाता है।

4. तत्त्वन्यासः—इसमें संसार के कार्य-कारण के रूप परिणत और इनसे परे रहने वाले तत्त्वों का शरीर में यथास्थान न्यास किया जाता है। इसे कतिपय साधक पीठन्यास भी कहते हैं।

5. करन्यासः—जो हाथों की सब अङ्गुलियों में तथा करतल और करपृष्ठ में किया जाता है, वह करन्यास है।

6. अङ्गन्यासः—जो त्रिनेत्र देवताओं के प्रसङ्ग में षडङ्ग और अन्य देवताओं के प्रसङ्ग में पञ्चाङ्ग होता है, उसे अङ्गन्यास कहते हैं।

7. व्यापकन्यासः—जो किसी भी अङ्ग का स्पर्श किये बिना सर्वाङ्ग में मन्त्रन्यास किया जाता है वह व्यापक न्यास कहा जाता है।

8. ऋष्यादिन्यासः—ऋष्यादिन्यास के छः अङ्ग होते हैं—सिर में ऋषि, मुख में छन्द, हृदय में देवता, गुह्यस्थान में बीज, पैरों में शक्ति और सर्वाङ्ग में कीलक। आगमतन्त्र में यह विशेषरूप से ध्यातव्य है कि मन्त्रों को प्रायोगिक रूप से करने से पूर्व यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र विशेषज्ञ गुरु से दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। बिना दीक्षा के आगमतन्त्र की कोई भी पूजा अथवा अनुष्ठान नहीं करना चाहिए, क्योंकि आगमशक्ति प्रलयङ्कारी शीघ्र होती है। शैवदर्शन में कहा है कि—

न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः।
न तत्त्वतस्तयोर्भेदश्च चन्द्रिकयोरिव।।

मानवशरीर के प्रत्येक अवयव में जो क्रियाशक्ति सुषुप्त हो रही है उसे पावन और जाग्रत् करने, हृदय के अन्तःस्थल में जो भावना शक्ति मूर्च्छित है उसको जाग्रत् करने के लिए तन्त्रशास्त्र में न्यास सर्वोत्तम महौषधि

है। न्यास करने से अङ्ग जाग्रत् होते हैं तो कोई शक्ति अनिष्ट नहीं कर सकती है तन्त्रशास्त्र में किसी भी षट्कर्म विधान की साधना से पूर्व और अन्त में 'बटुकभैरव' का पाठ नितान्त आवश्यक है। यह पाठ आगमतन्त्र में जैसे—टी.बी./कैंसर अस्पताल में प्रवेश से पूर्व मास्क लगाना नितान्त आवश्यक है उसी प्रकार आगमतन्त्रसाधना में स्थान का कीलन बटुकभैरव पाठ द्वारा आवश्यक है। आगमतन्त्र में मन्त्र छिन्नादि दोषों से युक्त हों तो साधकों को इन मन्त्रों से प्रयोग नहीं करना चाहिए। छिन्नादि दोष उनतालीस प्रकार के आगमतन्त्रशास्त्र में कहे गये हैं—

आगमतन्त्र में निषिद्ध मन्त्रों के लक्षण

छिन्नादि दुष्टा ये मन्त्रा पालयन्ति न साधकम्।
छिन्नो : शक्तिहीन: पराङ्मुख उदीरित:।।
बधिरो नेत्रहीनश्च कीलित: स्तम्भितस्तथा।
दग्ध स्तश्च भीतश्च मलिनश्च तिरस्कृत:।।
भेदितश्च सुषुप्तश्च मदोन्मत्तश्च मूर्च्छित:।
हृतवीर्यश्च हीनश्च ध्वस्तो बालक: पुन:।।
कुमारस्तु युवा प्रौढो वृद्धो निस्त्रिंशकस्तथा।
निर्बीज: सिद्धिहीनश्च केकरो बीजहीनक:।
घूमितालिङ्गितौ स्यातां मोहितश्च क्षुधातुर:।।
अतिदृप्तोऽङ्गहीनश्च अतिक्रुद्ध: समीरित:।
अतिक्रूरश्च संव्रीड: शान्तमानस एव च।।
स्थानभ्रष्टश्च विकल: सोऽतिवृद्ध: प्रकीर्तित:।
नि:स्नेह: पीडितश्चापि वक्ष्याम्येषाञ्च लक्षणम्।।

— *शारदातिलके*, द्वितीयपटल, 2.64-70

तन्त्रशास्त्र के अन्य पिङ्गलमत में भी दोषयुक्त मन्त्रों की साधना का निषेध किया गया है। यदि फिर भी कोई मन्त्रसिद्धि करता है तो उसका फल निम्न प्रकार बताया गया है—

मायाबीजं त्रितत्त्वं वा श्रीगृहं यत्र नास्ति चेत्।
शक्तिहीन इति ख्यात: सामर्थ्यं हन्ति मन्त्रिण:।।
पञ्चाक्षरस्तु यो मन्त्रो वह्निचन्द्रार्कवर्जित:।
नेत्रहीन इति ज्ञेयो दु:खशोकाभयावह:।। — *पिङ्गलमते*

मन्त्रों के प्रकार एवं अवस्था

भारतीय तन्त्रशास्त्र में मन्त्रों का विभाजन अत्यन्त गहनता से वर्णन प्राप्त होता है पश्चिमी बंगाल के तन्त्रशास्त्र में मन्त्रों को केवल छः प्रकार का स्वीकार किया गया है, जो कि षट्कर्मविधान में प्रयोग करते हैं परन्तु शास्त्रों में प्रत्येक सम्प्रदाय, देवता, देवियों के स्वकीय बीजमन्त्र पृथक्-पृथक् होते हैं। *शारदातिलक* ग्रन्थ में मन्त्रों के चौदह प्रकार के लक्षण बताये हैं तथा प्रणव की पचास कलाएँ कही गई हैं। जैसे—

सृष्टिर्बुद्धिः स्मृतिर्मेधा कान्तिर्लक्ष्मीधृतिः स्थिरा।
स्थितिः सिद्धिरिति प्रोक्ताः कचवर्गकलाः क्रमात्।। इत्यादि।

— *शारदातिलके*, द्वितीयपटल, श्लोक 18

मन्त्रों की अवस्थाएँ

त्रिंशदर्णश्चतुः षष्टिवर्णो मन्त्रः शताक्षरः।
चतुः शताक्षरश्चापि वृद्ध इत्यभिधीयते।।

— *शारदातिलके*, द्वितीयपटल, श्लोक 90

अर्थात् उन्नीस अक्षर वाले जिस मन्त्र में प्रणव के साथ ह्रल्लेखा (माया=ह्रीं) अथा अङ्कुश बीज (क्रौं) हो तो वह मन्त्र 'प्रध्वस्त' कहा जाता है। जिस मन्त्र में सात अक्षर हों वह 'बालक' अवस्था का होता है। आठ अक्षर का मन्त्र 'कुमार' अवस्था वाला, सोलह अक्षर का मन्त्र 'युवा' अवस्था, चौबीस अक्षरों का मन्त्र 'प्रौढ़' अवस्था वाला एवं तीस, चौंसठ, एक सौ व एक सौ चार अक्षर वाले मन्त्र को वृद्ध अवस्था वाला कहा जाता है। आगमतन्त्रशास्त्र में कुमार, युवा एवं प्रौढ़ अवस्था के मन्त्रों का प्रयोग पूर्ण रूप से सफल होता है।

वैदिक ग्रन्थों में यह स्पष्ट है कि केवल देवताओं के न्यास के द्वारा ही देवत्व की प्राप्ति व मन्त्र सिद्धि हो जाती है बशर्ते कि न्यास पूजा विधिवत् हो, जब न्यास विधिवत् सिद्धिप्रद होते हैं तो स्वतः अद्भुत स्फूर्ति, नवीन तत्त्व की चेतना का जागरण होता है जब न्यास सिद्ध हो जायेगा तथा तब मन्त्र सिद्धि में प्रत्येक मन्त्र के ऋषि, देवता, छन्द, बीज, शक्ति और कीलक करने की नितान्त आवश्यकता होगी। यह सब जानकर मन्त्र के जाप से पूर्व विधिवत् रूप से विनियोग अपेक्षित है विधिवत् किया गया अनुष्ठान पूर्णरूपेण सफल होता है। पूर्ण चरमसीमा तक अनुष्ठान किये जाने पर सिद्धि की स्थिति एक दिव्य ज्योति का दर्शन होता है वही परमशक्ति है। इन सभी का एकात्मक समूह वैज्ञानिकता का आधार है। विज्ञान द्वारा इस शक्ति का दर्शन नहीं

कराया जा सकता, परन्तु आगमतन्त्र की साधना का चमत्कार यथार्थ है। शक्ति साधनाके चमत्कार के आगे वैज्ञानिक चमत्कार न्यून है, परन्तु भावात्मक भाव में सब कुछ निहित है। इस सन्दर्भ में कहा है कि—

देवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः।
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदेवता।।

— *शारदातिलक*, भूमिका, पृ. 16

भावेन लभ्यते योगं, भावेन भाव्येन शिवः।
भावेन शक्तिमाप्नोति, तस्माद् भावं समाश्रयेत्।।

— *शारदातिलक*, सम्पा., पृ. 8

प्रोफेसर एवं न्यायशास्त्रविभागाध्यक्ष
राजकीय महाराज आचार्य संस्कृत कॉलेज,
जयपुर (राजस्थान)

शक्ति तत्त्व एवं ज्योतिष साहित्य में उपासना

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा

उपासना शब्द का उद्‌गम संस्कृत भाषा में उप+आस्+युच् (अन्) के समन्वित करने का परिणाम है। इससे प्रथम 'उप' उपसर्ग है द्वितीय आस् (उपवेशने) धातु या भाव व तृतीय युच् (अन्) प्रत्यय माना जाता है। उपासनम्=चित्तमनोवृत्ति में अधिष्ठित दैवतत्त्व की चिरकाल पर्यन्त, मन-बुद्धि व चित्त की एकाग्रता व संयम की भावना का नाम है। भारतवर्ष का निवासी, सनातन मतानुयायी अपनी रुचियाँ आसक्ति के भाव से शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य अथवा जगदम्बा स्वरूप शक्ति तत्त्व की आराधना या उपासना अवश्य करता है। यद्यपि सनातन धर्म का प्रमुख उपास्य परब्रह्म एक ही है, वह परब्रह्म निर्गुण, निरञ्जन व निराकार है किन्तु त्रिदेवों के त्रिगुणात्मक स्वरूप व मायारूपी त्रिशक्त्यात्मक देवी संवलन द्वारा ब्रह्माण्ड के उत्पत्ति, पालन व संहारादि कार्यत्रयी का सम्पादक होता है जिन्हें साधारण मानवीय भाषा में ब्रह्मा, विष्णु व रुद्र (महेश) के रूप में अभिहित किया गया है। अतएव श्री आद्यशङ्कराचार्य ने भगवती की स्तुति में लिखा है—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्च्यादिभिरपि,
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः पुभवति।। — *सौन्दर्यलहरी* 1

वस्तुतः जिस षकार नित्यब्रह्म, स्वयंप्रकाश, सच्चिदानन्द स्वरूप के माया शक्ति से आविष्ट राम, कृष्णादि अवतार रूप होते हैं वस्तुतः उसी प्रकार अन्य कारणों से नित्य रहती हुई देवी जब माया शक्ति से आविष्ट होकर वैष्णवी, माहेश्वरी, ब्रह्माणी आदि रूप से देवी प्रगट हुई सी का आभास देती है जैसाकि सप्तशती में वर्णित है—

नित्यैव सा जगन्मूर्त्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।
तथाऽपि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।। —*दुर्गासप्तशती*

और भी—

देवानां कार्यसिद्‌ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।। — तत्रैव

अमरकोषकार ने शक्ति शब्द के अनेक पर्याय दिये हैं यथा—'शक्तिः प्राणः, पराक्रमः, षड्‌गुणाश्शक्त्यतिस्त्रः, कासूसामर्थ्ययोशक्तिः' आदि। शक्ति व शक्तिमान् का अभिन्न सम्बन्ध है, उन्हें एक-

दूसरे से पृथक् कभी नहीं किया जा सकता है। स्वयं योगेश्वर शिव *सम्मोहनतन्त्र* में भगवती पार्वती से कहते हैं कि शिव तत्त्व का पूजन शक्ति तत्त्व के अभाव में मात्र अधूरा ही नहीं है, अपितु पातकदायक भी है—

गौरतेजो बिना यस्तु, श्यामतेजः समर्चयेत्।
जपेद्वा ध्यायते वापि स भवेत्पातकी शिवे।। — *सम्मोहनतन्त्रानुसार गोपालसहस्रनाम*

यह अर्चना, भक्ति, पूजा, नमस्था, अपचिति, सपर्या, अर्हणा आदि शब्द उपासना के ही पर्याय या अत्यन्त निकटार्थता लिये हुए हैं। *अमरकोष* ग्रन्थ में वर्णित है—

पूजानमस्थापचितिः सपर्याचार्हणाः समाः।
वरिवस्था तु शुश्रूषा, परिचर्याप्युपासना।। — *अमरकोष*

वर्तमान युग में विज्ञान ने जहाँ एक ओर मानव को प्रचुर मात्रा में नूतन आविष्कारों के फलस्वरूप भौतिक सुख-सुविधाओं से युक्त व समृद्ध बनाया है वहीं इन आविष्कारों के अत्यधिक उत्पादन या मानव जीवन की इन साधनों पर निर्भरता ने मानव जीवन के लिए दुष्कर परिस्थितियाँ भी उपस्थित कर दी हैं। अनेक जटिल शारीरिक समस्याओं के मूल में विज्ञान द्वारा उपस्थित चमत्कृति पूर्ण आविष्कार ही हैं। आज का जीवन मानव के सर्वविनाश को भी ब्रह्माण्ड के कुछ स्थलों पर देख चुका है, और कहीं-कहीं विनाश की तरफ सभ्यता को धीरे-धीरे ले जाया जाता हुआ देख कर भी मूकदर्शक बनकर विवश है। अतः उपासना या शक्ति तत्त्व के आशीर्वाद के अभय हस्त से पालित मनुष्य इन सभी विडम्बनाओं से असम्पृक्त रहता हुआ निरपेक्ष भाव से जीव जीता है। माना यह जाता है कि उपासना के साधन या उपास्यदेव की अवधारणा पर मनुष्य के सत्त्व, रज व तम इन तीनों गुणों का समन्वित प्रभाव होता है। यह तीनों गुण मानव जीवन पर प्रभाव दिखाते हैं। भारतीय मनीषा के आधारीभूत वेदाङ्गों में ज्योतिषशास्त्र के आधार नवग्रह आदि इन तीनों गुणों के ख्यापक, प्रतिपादक व इन गुणों से ओत-प्रोत हैं। ग्रहों का प्रभाव उनकी स्थिति, समय व स्थान सापेक्ष होता है जिसका दर्शन मानव के जन्मसमय, स्थान व दिनाङ्क के आधार पर परिगणित आकाशीय स्थिति से हो जाता है। इस चक्र के अनुसार नवम भाव को धर्म, उपासना आदि के लिए माना गया है। (*सारावली*) यहाँ यह विचार भी आवश्यक प्रतीत होता है कि यद्यपि शास्त्र में धर्म या उपासना विचार हेतु नवम भाव ही स्वीकृत है किन्तु यह धर्म ज्ञान क नींव पर खड़ा है और धर्म या उपासना को हम कर्म भी मान सकते हैं। स्मृतियों में तो कहा भी गया है कि कर्म अथवा धर्म का साधन शरीर है। (*मनुस्मृति*) अतः धर्म के मुख्य भाव नवम होते हुए भी सहायक भावों में पञ्चम, लग्न व दशम भावों को भी देखना शास्त्रोचित ही मानना चाहिए। ज्ञानाश्रित धर्म ही कर्मोन्मुखी करता है जिसका सत्परिणाम ब्रह्माण्ड को प्राप्त होता है। इसीलिए कहा जाता है कि धर्मस्थान की संस्थिति ही कारक नहीं होती अपितु उस भाव पर भवेश या अन्य ग्रहों की युति, दृष्टि आदि के सहारे भी फलित कथन उचित है। शुक्र व गुरु सत्त्व गुणधर्म द्योतक, मङ्गल, सूर्य को राजस गुण धर्म वाला व शनि, राहु, केतु में तमोगुणाधिक्य माना जाता है। चन्द्र व बुध साहचर्यानुसार गुण वार्धक्यानुसार फल प्रदान करने वाले हैं।

ग्रह स्थिति के अनुसार उपासना विचार

फलित ज्योतिषशासत्र में उपासना हेतु तीन भाव (लग्न, पञ्चम व नवम) जिनकी संज्ञा त्रिकोण मानी गई है, मुख्य माने जाते हैं। यदि इन तीनों भावों में या इनमें से किसी एक भाव पर भी बलवान् होकर शुभ ग्रह बैठता है तो जातक को सात्त्विक देवता का उपासक बनाताहै। ज्योतिष के उच्च फलितग्रन्थ में पाराशर भावों का बलाबल विचार करते समय लिखते हैं—**'प्रबलाश्चोत्तरोत्तरम्'** (*लघुपाराशरी*) इस उक्ति के अनुसार त्रिकोण स्थानों में भी विचार करने पर नवम स्थान सर्वाधिक बलवान् है, अत: नवम भाव में स्थित बली सौम्य ग्रह की संस्थिति सात्त्विक देवोपासक यथा गणपति, विष्णु, राम, कृष्णादि पुरुषदेवता अथवा शुक्र से देवी या शक्ति का उपासक तथा उक्त स्थान में क्रूर या अशुभ ग्रह के बलवान् होकर स्थित होने पर यक्ष, भैरव, भूत, प्रेतादि क्षुद्रदेवों की उपासना करने वाला बनाती है। नवम भाव यदि पापीग्रहों से विद्ध (कर्त्तरीयोग) बनायें तो ऐसी स्थिति वाला जातक उपासना में साकार देवताओं की उपासना का निन्दक भी हो जाता है। संहिताग्रन्थों में उपासना के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचने या साधना के उत्तर स्तर पर जाने के लिए समय भी निर्दिष्ट है जिसे मुहूर्त्त या सिद्धि हेतु 'काल' माना जाता है। फलितशास्त्र में अङ्गीभूत योगों में सिद्धियोग, नक्षत्र व वार जन्य सिद्धियोग, सर्वार्थसिद्ध मुहूर्त्त, अमृतसिद्धि मुहूर्त्तादि योगों का वर्णन भी मिलता है। यथा मुहूर्त्तग्रन्थ में लिखा है—

गुरौ पुष्यसमायोगे सिद्धयोग: प्रकीर्तित:। — *मुहूर्त्तचिन्तामणि*

महान् वैयाकरण पाणिनि ने पुष्य नक्षत्र की संज्ञा ही सिद्ध मानी है। वे पुष्य नक्षत्र को ही सिद्धिकारक मानते हैं—

पुष्यसिद्ध्यौ नक्षत्रे। —*अष्टाध्यायी*

पुष्य नक्षत्र में की गई मन्त्र साधना पुष्टिकारक होती है, सिद्धिकारक होती है अत: उपासना खण्ड व तन्त्र शास्त्र में पुष्य नक्षत्र का वर्णन अनेक जगह प्राप्त होता है। *शिवपुराण* में तो देवताओं द्वारा रुद्र (भगवान् शङ्कर) को पुष्य नक्षत्र माना है—

क्रतूनामश्वमेधोऽसि, युगाणां प्रथमो युग:।
पुष्यस्त्वं सर्वाधिष्ण्यानाममावस्या तिथिष्वपि।। — *शिवपुराण*

इसी प्रकार उपासना करते समय रवि व पुष्य नक्षत्र की युति (वार-नक्षत्र) के कारण भी विशिष्ट फलप्रद बताई गई है। इसमें शत्रुस्तम्भन, वाक्कीलादि प्रयोग कार्य भी सिद्धिकारक बताये गये हैं। पुष्य नक्षत्र की स्थिति गुरुवार या रविवार को दशमी तिथि पर होने से सर्वमणि, मन्त्रसिद्धि, औषधिक कल्पादि, शिल्पज्ञान, विद्यादान, कला सम्पन्नता साथ ही पितर पूजा द्वारा भी अक्षय पुण्य प्राप्ति द्वारा पितरों की तृप्ति होकर पुत्र व धन प्राप्ति कारक भी बताई गई है—

दशम्यां पुष्यसंयोगे, स योगोऽमृतसंज्ञकः।
अर्चयेद्यः पितॄंस्तत्र नित्यं तृप्तास्तु तस्य ते।। — ***नारदसंहिता***

और भी—

पौष्यद्वये पुष्यचतुष्ट्ये च
श्राद्धप्रदाता बहुपुत्रवान् स्यात्। — *नारदसंहिता*

इसी प्रकार अशुभफलप्रद ग्रह के अशुभ फलनिवारणार्थ भी अथवा अशुभ ग्रह की दशान्तर्दशा समय में अशुभ फल परिहारार्थ मणि-मन्त्र-औषधोपचार तथा मन्त्रोपचार व विभिन्न स्तोत्रपाठादि, विभिन्न मन्त्र जापादि उपासना भी निर्दिष्ट है यथा बुध के अशुभ निवारणार्थ विष्णुसहस्रनाम पठन, गुरु के दोषोपशमनार्थ शिवोपासना तथा शुक्र के दोष शमनार्थ देवी आराधना भी शास्त्र विहित है।

आचार्य जैमिनी द्वारा भी लिखा गया है कि द्वादशस्थ उच्च का शुभ ग्रह उपासना द्वारा शुभलोक की प्राप्ति कराता है—

उच्चैर्शुभैः शुभलोकः। — *जैमिनीसूत्र*

उपासना विधियाँ

उपासना के क्षेत्र में जितना महत्त्व मन्त्र पाठ का, स्तोत्र पाठ का है, उतना ही वैशिष्ट्य जप साधन का भी है। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने श्रीमुख से *गीता* में उद्घोषित किया है कि मैं यज्ञों में जप नामक यज्ञ हूँ, इससे जप की महत्ता सिद्ध होती है। (*मनुस्मृति*) जप हेतु नियम है कि द्विज को उपवीत धारण कर, शिखा बन्धपूर्वक जप करना ही फलप्रद है। इसी प्रकार वशीकरण प्रयोजन में पूर्वमुख, धन की इच्छा वाला पश्चिमाभिमुखी, आयुरक्षार्थ व शान्तिक व पौष्टिक कार्य सिद्धि हेतु उत्तर की दिशा में मुखकर जप यज्ञ को श्रेष्ठ माना जाता है। (*उड्डीशतन्त्र*) जपयज्ञ में निषिद्ध कृत्य भी है।

वर्तमान समय में पाश्चात्य विज्ञानियों द्वारा इन्हीं सब तथ्यों पर आधारित उपासना परक प्रयोग किए जाकर अभीष्ट फल प्राप्ति की जाती है, वहीं भारतीय परिवेश इनसे दूर होता रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि साक्षात् ईश्वर या पालक स्वरूप वेद मन्त्रों या पौराणिक मन्त्रों का यथाविधि उपासनर कर पूर्व के आचार्यों के समान ही फल व इष्ट प्राप्ति हो। तभी तनाव, दुःख व अवसाद जैसे शब्दों को इनके प्रभावों को दूर कर जीवन समृद्ध व सुखी किया जा सकेगा। तभी जीवेम शरदः शतं होगा।

सहायक आचार्य, ज्योतिष विभाग,
जगद्गुरु राजस्थान संस्कृत विद्यालय, मदाऊ,
भांकरोटा, जयपुर (राजस्थान) 302026

काश्मीर शैव दर्शन में स्पन्दशक्ति

श्रीमती प्रतिभा मुद्गल

आगम से लेकर निगम परम्परा तक सभी जगह शक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण से लेकर *रामायण*, *महाभारत*, सूत्र-साहित्य आदि साहित्यिक कृतियों में पराशक्ति का स्वरूप विवेचन प्राप्त होता है। कहीं उस पराशक्ति को सगुण मानकर देवी रूप में उसकी उपासना की गई है तो कहीं दार्शनिक दृष्टिकोण से वह चेतना रूप दिखाई पड़ती है।

आगमप्राप्त शैव परम्परा में शक्ति का एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। शाक्त परम्परा तो पूर्णत: ही शक्ति विषयक विवेचन पर आधारित है, किन्तु शैव परम्परा में भी उसका स्थान कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वह शक्ति शिव की शिवता है। शक्ति से तादात्म्यभाव से युक्त वह शक्त शिव ही विभिन्न लीलाएँ करने में समर्थ होता है।

वह विमर्शशक्ति जिससे प्रकाशविमर्शमय होता हुआ वह प्रकाशात्मा स्वयं अपना प्रसार करता है, उसे *परात्रिंशिकाशा* में परा-भट्टारिका की संज्ञा प्रदान की गई है। इसे ही प्रत्यभिज्ञादर्शन में स्वातन्त्र्यशक्ति एवं तान्त्रिक क्रियाशक्ति में महात्रिपुरसुन्दरी कहा जाता है। चेतना की चेतनता अथवा स्पन्दमयी यह गति जिससे बहिरङ्ग विश्वरूप में विसर्ग अर्थात् सृष्टि के रूप वाले प्रसार अथवा रूप विस्तार का दुर्घट कार्य सम्पन्न होता है, को ही स्पन्द सम्प्रदाय में स्पन्दशक्ति के नाम से जाना जाता है। शक्ति के लिए इस शब्द का प्रयोग *स्पन्दकारिका* नामक ग्रन्थ के आविर्भाव के साथ होता है। इसके द्वारा एक सम्प्रदाय का चलन हुआ जो परमशिव की एकात्मकता को बनाये रखते हुए अनेकता को प्रस्तुत करने वाली गति का वर्णन 'स्पन्द' रूप में करते हैं। काश्मीर शैव दर्शन में परमशिव ही परम तत्त्व हैं, अन्य सब कुछ उसकी स्वातन्त्र्य शक्ति का विलास है। अभेद में भेद का एवं भेद में अभेद का अवभासन करने वाली परमेश्वर की स्वभावरूप स्वातन्त्र्य शक्ति को ही स्पन्द कहते हैं।

परमशिव प्रकाशविमर्श रूप है। इस सामरस्य में शिव प्रकाश है और शक्ति उसका विमर्श है। शिव और शक्ति अथवा प्रकाश और विमर्श—यह केवल औपचारिक द्वित्व है। वस्तुत: यह नीरक्षीरात्मक सामरस्य है। विमर्श प्रकाश की स्पन्दता है और स्पन्दना होने के कारण प्रकाश का प्राण है। प्राणभूत स्पन्दना के बिना प्रकाश की सत्ता का कोई औचित्य नहीं है। शक्तिहीन शिव की कल्पना शव की कल्पना के समान है। अत: प्रकाशरूप शिव की, निजी अभिन्न, अहं विमर्शरूपा शक्ति ही स्पन्द है और स्पन्दना ही शिव का स्वातन्त्र्य है।

परमशिव वस्तुत: शिव एवं शक्ति का परिपूर्ण सामरस्यात्मक अनुत्तर संवित् तत्त्व है। वह अपने ही स्वातन्त्र्य से समस्त विश्व को अवभासित करता हुआ स्वयं विश्वोत्तीर्ण अवस्था में ही रहता है क्योंकि सम्पूर्णतया अभिपूर्ण अभिव्यक्ति केवल प्रतिबिम्बन्याय से चमकती हुई उसी के स्वातन्त्र्य का विलास है तथा उसी की नैसर्गिक परमेश्वरता का शिवात्मक रूप है। इस प्रकार सभी वस्तुएँ शिव के स्वातन्त्र्य का विलास होने के कारण उससे इतर कुछ भी नहीं है—

इत्थं नानाविधै: रूपै: स्थावरै: जङ्गमैरपि।
क्रीडया प्रसरतो नित्यमेक एव शिव: प्रभु:।।

— *तन्त्रालोक*, खण्ड 1, पृ. 195

शिव द्वारा इस नानाविध प्रसार का कारण होती है—उसकी वह स्पन्द शक्ति। शिव तो वस्तुत: परमशिव का स्थिर रूप है, वह विश्रान्त अवस्था है जो परिपूर्ण एवं आनन्द अवस्था में रहता है, शक्ति ही उस तत्त्व की आभासमान चलरूपता है। इस विश्रान्त एवं आभासमान चलरूपता के सामरस्य से ही वह परमशिव विश्वोत्तीर्ण होते हुए भी विश्वमय रूप में अभिन्नतया स्पन्दित होते रहते हैं। शुद्ध, असीम एवं परिपूर्ण परमशिव सदैव ही अपने से सर्वथा अभिन्न शक्ति के कारण गतिशीलता जैसी किसी अलौकिक सूक्ष्मतर तरङ्ग से आप्लावित रहते हैं। यही सूक्ष्मतर तरङ्गें समस्त सृष्टि का बीज है।[1] इसे ही एक सम्प्रदाय विशेष में 'स्पन्द शक्ति' के नाम से जाना जाता है।

स्पन्द की व्याख्या प्राय: किञ्चिच्चलन के रूप में की जाती है। इसका तात्पर्य है न चलते हुए भी चलने का आभास। फलत: गतिमान् अचल रहते हुए भी चलवत् आभासित होता है।[2] यह गतिशीलता का आभास मात्र है, वस्तुत: चलन नहीं। यह वस्तुत: स्वरूप में ही परिघटित चमत्कारातमक उच्छलता है—**'स्वरूपाच्च यदि वस्त्वन्तराक्रमणं, तच्चलनमेव न किञ्चित्वम्। नो चेत् चलनमेव न किञ्चित्। तस्मात् स्वरूप एवं क्रमादिपरिहारेण चमत्कारात्मिका उच्छलत्ता स्पन्द इतयुच्यते।'**[3]

स्पन्द शब्द का अर्थ सामान्य कोशग्रन्थों में ईषत् कम्पन, ईषत् चलन रूप से किया गया है।[4] यहाँ काश्मीर शैव दर्शन में भी इसका तात्पर्य किञ्चिच्चलन के रूप में ही लिया गया है। स्पन्द शब्द 'स्पदि' धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ किञ्चिच्चलन[5] अर्थात् सूक्ष्म अहं विमर्शात्मक स्फुरणा है। यह स्फुरण परमशिव की बाह्य विश्वात्मक रूप में स्वतन्त्र शक्ति प्रसार की ओर उन्मुखता है।[6] परमेश्वर की इस किञ्चिच्चलनाभास रूप स्फुरण को शैव शास्त्रों में ऊर्मि, बल, उद्योग, हृदय, सार, मालिनी, परा इत्यादि अनेक संज्ञाओं से अभिहित किया जाता है।[7]

अभिनवगुप्त इसे परिपूर्ण संवित्स्वरूप परमशिव की नैसर्गिक परिपूर्ण संवित्स्वरूपता शक्ति कहते हैं। वे इसे कुल, सामर्थ्य, हृदय, सार, स्पन्द, विभूति, त्रिंशिका, काली, कर्षणी, चण्डी, वाणी आदि अनेक नामों से अभिहित करते हैं—**'तत्र परमेश्वरः पूर्णसंवित्स्वभावः पूर्णतैव अस्य शक्तिः—कुलं सामर्थ्यं ऊर्मिः हृदयं सारं स्पन्दः विभूतिः श्रीशिका काली कर्षणी चण्डी वाणी भोगो दृक् नित्या इत्यादिभिः आगमभाषाभिः तत्तदन्वर्थप्रवृत्ताभिः अभिधीयते।'** — (*तन्त्रसार*, आ. 4, पृ. 24)

इनके अनुसार परिपूर्ण सामरस्यात्मक परमशिव में अलौकिक स्फुरण जैसी तरङ्ग को किञ्चिच्चलन या स्पन्द कहते हैं जिसके बिना उसकी संविद्रूपता भी सिद्ध नहीं हो सकती। यह किञ्चिच्चलन उसी प्रकार है जिस प्रकार की निस्तरङ्ग सागर के अन्तस्तल में विद्यमान गतिशीलता होती है, जो विविध प्रकार की तरङ्गों के रूप में प्रकट होती है। इसी प्रकार परमशिव की स्वभावभूत स्पन्दशीलता में समस्त आन्तर एवं बाह्य जगत् का स्फुरण होता रहता है। अत एव स्पन्द को समस्त विश्व का सार भी कहा गया है।[8]

इस शक्ति का स्वरूप पूर्ण 'अहं-विमर्श' है। यह अहं विमर्श ही वह मौलिक स्फुरणा है जिससे वह एक शक्ति[9] अनन्त पों में स्फुरित होकर विश्व के अनन्त और विचित्र रूपों में अवभासित होती है। इस स्पन्दशक्ति का विवेचन 'उन्मेष एवं निमेष' की शब्दावली में किया जाता है। यहाँ उन्मेष एवं निमेष का अर्थ उत्पत्ति एवं विनाश नहीं है। उन्मेष से तात्पर्य चेतना के उस पूर्ण विकास की स्थिति से है जिसमें सारे विकल्पों का ह्रास हो चुका है और निमेष से तात्पर्य उस स्थिति से है जबकि इन्द्रिय और मन की समस्त बाह्योन्मुख क्रियाएँ विरमित हो जाती हैं और भेदात्मक चेतना उस स्पन्द तत्त्व के निमेष में निमग्न हो जाती है।

यह उन्मेष एवं निमेष वस्तुतः विज्ञानरूप अनुत्तर तत्त्व की वह एक सङ्कल्पात्मक गतिमयता है जिसका स्वरूप मात्र 'हं प्रत्यवमर्श' ही है। शक्ति सदा उदित रूप ही है अतः उसका न तो कभी उन्मेष अर्थात् उदय या विकास होता है और न ही निमेष या सङ्कोच होता है।

स्पन्दशक्ति का स्वरूप उच्छलनात्मक[10] है। इसका तात्पर्य है कि यह युगपत् ही स्वरूप का विकास एवं सङ्कोच करती है। ये उन्मेष एवं निमेष की प्रक्रियाएँ क्रमिक न होकर युगपत् घटित होती हैं।[11] स्पन्दशक्ति अनुत्तर तत्त्व परमशिव की सारभूत हृदय[12] विमर्शरूपा शक्ति है। शक्तिमान् होने के कारण ही परमशिव में विश्वोत्तीर्णता अर्थात् विशुद्ध ज्ञान-प्रधान प्रकाशरूपता और विश्वरूपता अर्थात् क्रिया प्रधान विमर्शरूपता, मूयराण्डन्याय से आगामी शावक के विचित्र रङ्गों वाले परों की कल्पना के समान, अभेद 'अहं' रूप में अवस्थित रहता है—

संविन्निष्ठा हि विषयव्यवस्थितयः।

प्रकाशविमर्शमय शिव में क्रियाप्रधान विमर्श भाग ही सामान्य स्पन्द है।[13] इस स्पन्द शक्ति के द्वारा ही अन्तर्मुख 'अहं' में अभिन्न रूप में अवस्थित, विश्वकल्पना का बहिर्मुख 'इदं' रूप में अवभासन और 'इदं'

रूप में अवभासित विश्व की 'अहं' रूप में विश्रान्ति की क्रिया होती है। इस विमर्शात्मक स्पन्दशक्ति का ही ऐसा स्वातन्त्र्य या असीम सामर्थ्य है कि वह अवभासित पदार्थ को आत्मरूप कर सकती है, अपने आप को भावमण्डल के रूप में अवभासित कर सकती है, दोनों को एकाकार बनाकर धारण कर सकती है और दोनों से पृथक् रूप में भी अवस्थित रह सकती है।[14] यह स्पन्दशक्ति या विमर्शात्मक स्फुरणा परमशिव का वह स्वभाव है जिसके बिना प्रकाश की कल्पना व्यर्थ है क्योंकि विमर्शहीन प्रकाश बिम्बग्राही होने पर भी जड़ ही होता है।[15] यह महान् सत्ता[16] होने के कारण प्रत्येक क्रिया में स्वतन्त्र है।[17] इसी कारण इसे स्वातन्त्र्य के प्रत्यय से भी जोड़ा जाता है। क्षेमराज तो स्पन्द तत्त्व की व्याख्या स्वातन्त्र्य शब्द से ही करते हैं, [18] क्योंकि स्पन्द वह किञ्चिच्चलन है जिसके द्वारा नानारूपों का विकास होता है। इससे ही जगत् के समस्त दृश्यमान अथवा अदृश्यमान पदार्थ की सत्ता है। देश, काल का प्रकाशन करने वाली, यह स्वयं नित्य एवं व्यापक होने के कारण उनसे परे है।[19] यह शक्ति संविद्रूप में अन्तर्मुख एवं बहिर्मुख रूप से स्थित होती हुई, स्वयं को प्रमाता, प्रमेय आदि रूपों में अवभासित करती है एवं उनसे पृथक् भी रहती है।[20]

विश्व के समस्त पदार्थ इस शक्ति के ही रूप हैं।[21] वस्तुत: परमसंवित् की यह एक शक्ति प्रसारक्रम में अनन्त रूपों में प्रकाशित होती है। पतिदशा में वह चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया—इन पाँच मुख्य शक्तियों के रूप में तथा पशुदशा में प्राण, अन्तःकरण, बाह्य-इन्द्रियाँ इत्यादि अनन्त प्रमेयों के रूप में आभासित होती है।

परमसंवित् की अभिन्न स्वातन्त्र्य शक्ति ही उसकी आनन्दशक्ति है, उस आनन्द का चमत्कार ही इच्छाशक्ति है, प्रकाशरूपता ही चिद्शक्ति है, विमर्शमयता ही ज्ञानशक्ति है एवं प्रत्येक प्रकार के आकार इत्यादि को अवभासित करने का सामर्थ्य ही क्रियाशक्ति है।[22] इससे ज्ञात होता है कि यह समस्त दृश्यमान प्रपञ्च मौलिक स्वातन्त्र्य शक्ति का ही विकास है।[23]

स्पन्दशक्ति के प्रसार के दो रूप हैं—सामान्य और विशेष। इन्हीं दो रूपों के आधार पर शैव दार्शनिकों ने इसे सामान्य स्पन्द और विशेष स्पन्द[24]—इन संज्ञाओं से अभिहित किया है। *परात्रिंशका* के अनुसार परमशिव के अन्त:स्वरूप को सामान्य स्पन्द तथा अपेक्षाकृत बहिर्मुख स्वरूप को विशेष स्पन्द कहते हैं। इन्हें ही क्रमश: शिव एवं शक्ति भी कहा गया है।[25]

सामान्य स्पन्द विश्वमयता में भी विश्वोत्तीर्णता है। यह परमशिव का वह स्वभाव है जिसके कारण वह सृष्टि, स्थिति आदि पञ्चकृत्यों को करता हुआ भी समरस रूप में प्रकाशित होता रहता है। यह वह स्थिति है जहाँ किसी भी प्रकार का कोई भेद नहीं रहता। इसे पूर्ण विश्रान्ति पद भी कहा गया है। इस अवस्था में सभी कुछ प्रकाशविमर्श के समरस रूप में स्थित रहता है—

हृदये बोधमयो यः स्वविमर्शपूर्णचिच्चमत्कारः।
युगपत् द्रागिति हठतो लीनीवक्तृविश्वतः स्फुरणः।।
भावग्राह्याद्य चरप्रदशा द्वयोल्लासिनिर्वृति सुपूर्णः।
जगदानन्दमयोऽसौ सामान्यस्पन्द इत्युक्तः।।[26]

विशेष स्पन्द एकाकारता में अनेकता है। विशेष स्पन्द सामान्य स्पन्द को आधार बनाते हुए बहिर्मुखतया विविध रूपों को प्राप्त होते रहते हैं। इनका विश्रान्ति स्थान सामान्य स्पन्द ही है। परमेश्वर जब अपने स्वातन्त्र्य से अपने ही स्वरूप का इदंतया विमर्शन करता है तो वह विमर्शन ही विशेष स्पन्द कहलाता है। इसको व्या लिङ्ग भी कहा जाता है, क्योंकि इसी के कारण परिपूर्ण परमशिव में इदन्ता का स्फुट आभास होता है।

इस प्रकार स्पन्दशक्ति समस्त सृष्टि के मूल में सूत्रवत् स्थित रहती है। यद्यपि काश्मीर शैव दर्शन का परमतत्त्व शिव है तथापि स्पन्दशक्ति उसकी सिसृक्षा है, उसका किञ्चिच्चलन है। यह शिव का स्वस्वभाव है। शिव एवं शक्ति—ये नामद्वय तो वस्तुतः अभिधान मात्र है क्योंकि इन्हें पृथक्-पृथक् करना असम्भव है। यह ज्ञानरूप शिव की क्रियात्मिका शक्ति[27] है जिसके द्वारा शिव विश्वाभासन में शक्त होता है। यह स्पन्दशक्ति परमशिव की पूर्णता के आभोग का निमित्त है, उसके चमत्कारात्मक आह्लाद की अनुभूति है, उसका स्वस्वभाव है। स्वस्वभाव का अर्थ है कि यह स्पन्दशक्ति कभी विरमित नहीं होती। यह पूर्ण विश्रान्ति परमशिव की सतत गतिशीलता है।

सन्दर्भाः

1. स एव विश्वमेषितुं ज्ञातुं कर्तुं चोन्मुखो भवन्।
शक्तिस्वभावः कथितो हृदयत्रिकोणमधुमांसलोल्लासः।। — *महार्थमञ्जरी*, पृ. 40 (परमार्थसार, पृ. 24 पर उद्धृत)

2. स्पन्दनं च किञ्चिच्चलनम्। एषैव च किञ्चिद्रूपता यद् अचलमपि चलम् आभासते इति, प्रकाश-स्वरूपं हि मनागपि नातिरिच्यते, अतिरिच्यते इव इति अचलमेव आभासभेदयुक्तमेव च भाति इति।
— *ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी*, (भा. 1), पृ. 208

3. *परात्रिंशिका विवरण*, पृ. 207

4. (क) *शब्दकल्पद्रुम*, भाग. 5, पृ. 457
(ख) *वाचस्पत्यम्*, भा. 5, पृ. 366

5. *स्पन्दकारिका* के टीकाकार भट्ट उत्पल भी स्पन्द को 'स्पदि' धातु से ही व्युत्पन्न मानकर इसकी व्याख्या किञ्चिच्चलन के रूप में करते हैं। उनके अनुसार स्पन्द निस्तरङ्ग परमात्मा की युगपत् निर्विकल्परूपता व औन्मुख्यवृत्तिता है।
— नवजीवन रस्तोगी, *काश्मीर शिवाद्वयवाद की मूल अवधारणाएँ*, पृ. 54

6. उदयमनुत्तरमूर्तिर्निजेच्छयाखिलमिदं जगत्स्रष्टुम्।
पस्पन्दे स स्पन्दः ...। — *षट्त्रिंशत्तत्त्वसन्दोहः*

7. इह परमेश्वरस्य महाप्रकाशात्मनो विमल स्यापि एकैव परामर्शशक्तिः किञ्चिच्चलत्ताभासरूपतया स्पन्दः इति, स्फुरता इति, ऊर्मिः इति, बलम् इति, उद्योगः इति, हृदयम् इति, सारम् इति, मालिनी इति, परा इत्याद्यनन्तसंज्ञाभिः आगमेषु उद्घोष्यते। — *स्पन्दसन्दोहः*., पृ. 5

8. किञ्चिच्चलनं तावदनन्यस्फुरणं हि यत्।
निस्तरङ्गतरङ्गादिवृत्तिरेव हि सिन्धुता।।
सारमेतत्समस्तस्य यच्चित्सारं जडं जगत्।
तदधीनप्रतिष्ठत्वात्तत्सारं हृदयं महत्।। — *तन्त्रालोक*, 4.184-186

9. शिवस्यैका महाशक्तिः शिवश्चैको ह्यनादिमान्।
सा शक्तिर्भिद्यते देवि! भेदैरानन्त्यसम्भवैः।। — *स्वच्छन्दतन्त्र*, 11.271

10. स्वात्मनयुच्छलनात्मकः। — *तन्त्रालोक*, 4.183

11. सा चैषा स्पन्दशक्तिर्गर्भीकृतानन्तसर्गसंहारैकधनाहन्ताचमत्कारानन्दरूपा युगपदेवोन्मेषनिमेषमयी।।
— *स्पन्दनिर्णय*, पृ. 3-4

12. सैषा सारतयाप्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिनः। — *ईश्वरप्रत्यभिज्ञा*, 1.5.14

13. हृदये स्वविमर्शोऽसौ द्राविताशेषविश्वकः।
भावग्रहादिपर्यन्तभावी सामान्यसङ्ज्ञकः।।
स्पन्दः स कथ्यते शास्त्रे ...। — *तन्त्रालोक*, 4.182-183

14. विमर्शो हि सर्वसहः परमपि आत्मीकरोति, आत्मानं परीकरोति, उभयम् ऐकीकरोति, एकीकृतं द्वयमपि न्यग्भावयति इत्येवंस्वभावः।। —*ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी*, 1.5.13

15. स्वभावमवभासस्य विमर्शं विदुरन्यथा।
प्रकाशोऽर्थोपरक्तोऽपि स्फटिकादिजडोपमः।। — *ईश्वरप्रत्यभिज्ञा*, 1.5.11

16. सा स्फुरता महासत्ता...। — *ईश्वरप्रत्यभिज्ञा*, 1.5.14

17. सत्ता च भवनकर्तृता सर्वक्रियासासु स्वातन्त्र्यम्। — *ईश्वरप्रत्यभिज्ञा*, 1.5.15

18. चित्स्वाभाव्यादचलस्यापि श्रीभगवतः स्वातन्त्र्यशक्तिरविभक्ताप्यशेषसर्गसंहारादि परम्परां दर्पणनगर-वत्स्वभित्तावेव भावियुक्त्यानधिकामप्यधिकामिव दर्शयन्ती किञ्चिच्चलत्तात्मकधात्वर्थानुगमात्मस्पन्द इत्यभिहिता तेन भगवान्सदा स्पन्दतत्त्वसतत्त्वो न त्वस्पन्दः। — *स्पन्दनिर्णय*, पृ. 3

19. देशकालविशेषिणी। — *ईश्वरप्रत्यभिज्ञा*, 1.5.14

20. अत एषा स्थिता संविदन्तर्बाह्योभयात्मना।
स्वयं निर्भास्य तत्रान्यद्भावयन्तीव भासते।। — *तन्त्रालोक* 4.147

21. शक्त्योऽस्य जगत्कृत्स्नं शक्तिमांस्तु महेश्वरः। — *शिवसूत्रविमर्शिनी*, पृ. 89; स्पन्दकारिका, नीलकण्ठ गुरुट्, पृ. 6 पर उद्धृत

22. तस्य च स्वातन्त्र्यम् आनन्दशक्तिः, तच्चमत्कार इच्छाशक्तिः, प्रकाशरूपता चिच्छक्तिः, आमर्शात्मिकता ज्ञानशक्तिः सर्वाकारयोगित्वं क्रियाशक्तिः। — *तन्त्रसार*, आ. 1, पृ. 5

23. तस्मात्संवित्त्वमेवैतत्स्वातन्त्र्यं यत्तदप्यलम्।
विविध्यमानं बह्वीषु पर्यवस्यति शक्तिषु।। — *तन्त्रालोक*, 1.160

24. स्पन्दस्य परस्य शाक्तस्य तत्त्वस्य उपचरित सामान्यविशेषात्मकतया द्विप्रकारत्वेन व्याख्यास्यमानस्य एष उपादेयतमः परमकारणभूतस्य सत्यस्य आत्मस्वरूपस्यऽयमहमस्मि, अतः सर्वं प्रभवति, अत्रैव च प्रलीयते—इति प्रत्यवमर्शात्मको निजो धर्मः सामान्यस्पन्दः विशेषस्पन्दा अनात्मभूतेषु देहादिषु आत्माभिमानमुदभावयन्तः परस्परभिन्नमायीयप्रमातृविषयाः— सुखितोऽहम् दुःखितोऽहम् इत्यादयो गुणमयाः प्रत्ययप्रवाहाः संसारहेतवः।। — *स्पन्दकारिकाविवृत्ति*, पृ. 63-64

25. किञ्चिच्चलनात्मकत्वात् स च शिव शक्तिरूपः सामान्यविशेषतः। — *परात्रिंशिका*, पृ. 208

26. *मालिनी विजय वार्तिक*, 4.182-183

27. सेयं क्रियात्मिका शक्तिः शिवस्य पशुवर्तिनी।
बन्धयित्री स्वमार्गस्था ज्ञाता सिद्ध्युपपादिका।। — *स्पन्दकारिका*, 48

शोध छात्रा, संस्कृत विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर (राजस्थान) 302015
चलवाणी - 9929089585

सन्तमत में कुण्डलिनी शक्ति का विवेचनात्मक स्वरूप

डॉ. आदित्य आङ्गिरस

भारतीय संस्कृति के इतिहास को यदि देखें तो समस्त साहित्य में हमें दो धाराओं के दिग्दर्शन होते हैं जिन्हें हम विशुद्ध साहित्यिक धारा एवं लोकधारा के नाम से अभिहित कर सकते हैं। ये दोनों साहित्य की धाराएँ न केवल एक दूसरे की पूरक रहीं हैं अपितु ये दोनों धाराएँ एक दूसरे की संपोषक एवं संवर्धक के रूप में भी देखी जा सकती हैं। संस्कृत साहित्य के माध्यम से जहाँ कुण्डलिनी शक्ति की चर्चा हुई है वहीं दूसरी ओर हिन्दी साहित्य के विशेषकर सन्त मत इससे प्रभावित हुऐ बिना न रह सके। फ़लत: सन्त साहित्य में कुण्डलिनी एवं षट्-चक्र निरूपण की छटा अपने आप में देखते बनती है। इस शोध पत्र के माध्यम से सन्त मत के विचारकों का इन्हीं संदर्भों में मत प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

पूर्व पीठिका

भारतीय साहित्य के इतिहास में संवत् 1375 से ले कर संवत् 1700 तक के समय में जिस आन्दोलन के कारण समस्त भारतीय उप-महाद्वीप सम्यक् रूपेण प्रभावित हुआ है वह काल हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के नाम से जाना जाता हैं। इसका मूल कारण यह हो सकता है कि इस काल में भारतीय समाज के भक्त कवियों में जहाँ उस परम तत्त्व को सृष्टिकर्ता के रूप में जानने की इच्छा भारतीय समाज में उत्पन्न हुई वहीं दूसरी ओर उन्होंने सगुण एवं निर्गुण भक्ति के माध्यम से उस परम तत्त्व को जानने एवं साक्षात्कार करने का भी प्रयास किया। हिन्दी साहित्य के इतिहासवेत्ता इस बात को तो स्वीकार करने में कोई भी हिचक न महसूस करेंगें कि हिन्दी साहित्य में यह काल अकारण नहीं आया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जहाँ इसे पराजित अथवा हतदर्प जाति का भाग्य मान कर अपना अभिमत प्रकट करते हैं वहीं आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे प्राचीन भारतीय परम्परा से स्वभावत: उद्भूत होना माना है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि प्राचीनभारतीय परम्परा पर यदि हम दृष्टि-पात करें तो हमारे सामने वैदिक, उपनिषद्, *महाभारत* एवं *रामायण* कालीन विचारधारा का जो स्वरूप हमारे सामने आता है वह निश्चित रूप से आचार्य शुक्ल के मत को पोषित नहीं करता है। सन्त मत में कुण्डलिनी शक्ति के बारे में विचार करने से पहले यह आवश्यक बन जाता है कि हिन्दी साहित्य का यदि हम गंभीर रूप से अवगाहन करें तो तो हमारे सामने यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि भारतीय संस्कृति में कहीं न कही उस परम तत्त्व को जानने की इच्छा रही है जो मनुष्य को जीवन के श्रेष्ठतम रूप की ओर अग्रसर करने में हमेशा ही उद्यत रही है। समस्त पौराणिक साहित्य इसी तथ्य

का प्रतिपादित करते हैं कि मनुष्य उस परा शक्ति के दर्शन करने के लिये हमेशा ही लालायित रहा है जिसे आचार्य द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य की भूमिका एवं कबीर के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

यद्यपि हिन्दी साहित्य का आदिकाल संवत् 1050 से शुरु होना माना जाता है तथापि यह बात स्पष्ट करना एक अनिवार्यता बन जाती है कि तत्कालीन हिन्दी साहित्य पर जहाँ एक ओर मध्य एशियाई देशों की बोलियों का प्रभाव रहा वहीं दूसरी ओर हमें यह भी देखना चाहिये कि हिन्दी साहित्य के आदिकाल अथवा वीरगाथा काल से पहले बौद्ध, जैन, सिद्ध एवं नाथ साहित्य परम्पराएँ भी लोक जीवन पर हावी रहीं हैं जो विभिन्न भारतीय धर्म साधनाओं से प्रभावित थीं और जिनका सम्बन्ध एवं परिणिति हम *पातञ्जल योग सूत्र* में भी देख सकते हैं। विशेषकर सन्त मत इन्ही सम्बन्धों में विचारणीय है। क्यों कि सन्तमत का आधार न केवल लोक परम्परा रही है बल्कि उसके पीछे संस्कृत साहित्य की शास्त्रीय परम्परा भी उतनी ही सशक्त रूप से विद्यमान रही है। अत: सन्त मत के कबीर आदि कवियों ने जो भी बात कुण्डलिनी शक्ति को ले कर की वह बहुधा लोकश्रुति एवं शास्त्रीय परम्परा पर आधारित थी। फ़लत: जहाँ बौद्ध परम्परा से उद्भूत सिद्ध नाथ परम्परा के सूत्र हमें पातञ्जल योग सूत्र में देखने को मिलते हैं वहीं दूसरी ओर यह भी कहा जा सकता है वहीं सिद्ध नाथ साहित्य में *शिव संहिता, हठयोग प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता, गोरक्ष सिद्धान्त* आदि ग्रन्थों का प्रभाव भी सन्त साहित्य में मिलता है।

कुण्डलिनी शक्ति का स्वरूप

वस्तुत: हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह वह काल रहा जब भारतीय मानस विभिन्न प्रकार के मत मतान्तरों से अटा हुआ हो कर भी विभिन्न मतों में विभाजित था। इसका स्पष्ट रूप से दर्शन हमें आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास *चारूचन्द्रलेख* में होता है विशेषकर जहाँ नाथ संप्रदाय की बात आती है। आचार्य द्विवेदी ने नाथ संप्रदाय की शाक्त साधना को हठयोग के नाम से अभिहित किया है।[1] यह तो निश्चित रूप से माना जा सकता है कि नाथ संप्रदाय की इस साधना पद्धति ने भारतीय जन मानस को अत्यधिक प्रभावित किया क्योंकि भैरवी साधना आदि इसी साधना का एक रूप हैं। इस दर्शन के अनुसार महाकुण्डलिनी शक्ति समष्टि जगत् में व्याप्त है एवं यह शक्ति जब व्यष्टि रूप में अभिव्यक्त होती है तो वह कुण्डलिनी शक्ति कहलाती है। हठयोग के अनुसार जीव जन्म से पूर्व कुण्डलिनी शक्ति एवं प्राण शक्ति को लेकर ही मातृ-कुक्षि में प्रवेश करता है एवं जन्म पश्चात् प्रत्येक जीव की तीन अवस्थाएँ होती है क्रमश: जागृत् स्वप्न, एवं सुषुप्ति। इस मत के अनुसार कुण्डलिनी शक्ति व्यष्टि (व्यक्ति अथवा जीव) के मूलाधारचक्र में निश्चेष्ट अवस्था में ही रहती है। यह मूलाधार चक्र प्रत्येक मनुष्य के पायु एवं उपस्थ स्थान के मध्य अवस्थित है। यहाँ यह स्पष्ट करना एक आवश्यकता बन जाती है कि प्रत्येक जीव के इस स्थान पर जीव-शिव की अवस्थिति है एवं कुण्डलिनी शक्ति इस जीव-शिव पर साढे तीन वलय में लिपटी हुई है। इसी मूलाधार चक्र को कई व्यक्ति अग्निचक्र भी मानते हैं और कई अग्निचक्र की अवस्थिति मूलाधारचक्र के ऊपर मानते हैं। इसके ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र की अवस्थिति है एवं इसके पश्चात क्रमश: मणिपूर चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धि चक्र एवं आज्ञा चक्र हैं जिसके पश्चात् अन्त में जीव के मस्तक में शून्य चक्र की अवस्थिति है। शून्य चक्र को कई

साधक सहस्रार भी मानते हैं। इसी शून्य चक्र अथवा सहस्रार में परम शिव की उपस्थिति भी मानी गई है। अधिकांश नाथ पंथी इसे (शून्य चक्र) गगन मंडल एवं कैलाश मानते हैं।2 साधक की साधना की चरम परिणति जीव शिव पर वलयित कुण्डलिनी शक्ति को परम शिव तक लेकर जाना ही माना गया है।

सन्त मत में कुण्डलिनी शक्ति का स्वरूप

सन्त मत के सिद्धान्तों पर इन्हीं सन्दर्भों में यदि हम दृष्टिपात करें तो हमारे सामने एक अन्य चक्र का वर्णन आता है एवं सन्त उस चक्र को 'सुरति कमल'[3] के नाम से अभिहित करते हैं। सन्त मत के साधकों का मानना है कि शून्य चक्र अथवा सहस्रार तक पहुंचे योगी का चित्त व्युत्थान काल में अर्थात् समाधि टूटने के बाद फ़िर वासना का शिकार हो जाता है पर सुरति कमल में विचरण करने वाले योगी का चित्त ऐसे खतरे से निश्चिन्त रहता है।[4] यद्यपि कुण्डलिनी शक्ति साधना को हठ योग से भिन्न माना गया है परन्तु वे कहीं न कहीं हठ योग के माध्यम से कुण्डलिनी विज्ञान की चर्चा अवश्य करते हैं।

यह बात तो निश्चित है कि विभिन्न साधना पद्धतियां (सिद्ध साधना, नाथ साधना आदि पद्धतियां) मनुष्य शरीर में बहत्तर सहस्र नाडियां मानती हैं जिसमें कुछ नाडियां विशेष हैं। सभी साधना पद्धतियों में तीन विशेष नाडियों का विशेष उल्लेख अवश्य मिलता है जिन्हें हठयोगियों ने इडा, पिङ्गला एवं सुषुम्ना नाडियों के नाम से अभिहित किया है। मनुष्य शरीर के बांई ओर इडा नाडी एवं दांई ओर पिगला नाडी अवस्थित है एवं इन दोनों के मध्य सुषुम्ना नाडी अवस्थित है जो कि कुण्डलिनी शक्ति का गम्य मार्ग है। बौद्ध विचारकों के अनुसार मनुष्य देह में सुमेरू की कल्पना की गई है उनका अभिप्राय संभवत: यही सुषुम्ना नाडी ही है। बौद्ध विचारकों के अनुसार दक्षिण से ठण्डी एवं उत्तर से गर्म हवाएँ आती है जो सुमेरु पर्वत पर प्रहार करती है एवं वायु का यह प्रहार साधक की साधना में विघ्न उपस्थित करते हैं। सुषुम्ना नाडी , जैसा कि माना जाता है, के भीतर कई नाडियां विद्यमान है, सुषुम्ना नाडी के भी आगे भेद करते हुऐ सुषुम्ना के भीतर वज्रा नाडी, उसमें चित्रणी नाडी, उसके भीतर ब्रह्मनाडी विद्यमान है। अत: कहना न होगा कि नाडियों की संख्या तीन कि अपेक्षा पाँच हैं। इसीलिये शाक्त साधना में पञ्चस्रोत अथवा पञ्च धारायें कहने की प्रथा विद्यमान है।[5] सिद्ध एवं नाथ साहित्य इसे 'ललना-रसना-अवधूती' कहा है।[6] यहाँ अवधूती का अर्थ सुषुम्ना नाडी से ही है जिसमें शाम्भवी शक्ति है।[7] कबीर आदि के लिये इंगला 'गंगा' पिङ्गला 'यमुना' एवं सुषुम्ना ही 'सरस्वती' है एवं ब्रह्मरंध्र में ही इन तीनों का संगम होता है और यही त्रिवेणी का प्रयाग है।[8] अत: कबीर आदि संत कवि इसी त्रिवेणी में स्नान करने का विधान करते हैं। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक बनता जाता है कि समस्त सन्त काव्य में जिन प्रतीकों का प्रयोग किया गया है उनका लाक्षिणक अर्थ इन्हीं संदर्भों में प्रकट होता है।

साधक नाना प्रकार की साधनाएँ करता है जिसके परिणाम स्वरूप उसकी कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्वमुख रहती है। साधारण मनुष्य में यह क्रिया नहीं होती क्योंकि वह उग्र तपस्या नहीं करता एवं वह आजीवन काम क्रोध, लोभ मोह आदि चित्त के विकारों से चलित व्यवहार करता है। ठीक इसके विपरीत, साधक जब अपनी साधना के परिणामस्वरूप अपनी कुण्डलिनी शक्ति को ऊर्ध्वमुखी दिशा देता है अथवा जब साधना

की अवस्था में कुण्डलिनी ऊपर की ओर अग्रसर होती है तो उस समय उसमें एक स्फ़ोट होता है जिसे शाक्त साधना में नाद कहा गया है। नाद से प्रकाश होता है एवं प्रकाश का ही व्यक्त रूप महा बिन्दु है। यही प्रकाश क्रमशः तीन प्रकार का होता है जिसे इच्छा ज्ञान एवं क्रिया कहा जाता है। परिभाषिक तौर पर सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि यहीं हैं। सन्त कवि जब भी नाद एवं बिन्दु की बात करते हैं तो उनके अनुसार यह नाद एवं बिन्दु अखिल जगत् में व्याप्त है और उनका अभिप्राय इसी नाद एवं बिन्दु से है जिसे वे अनहद नाद मानते हैं। कुमार गंधर्व के कबीर वाणी गायन से यही तथ्य हमारे सामने आता है। सन्त कवि इस बात को मानते हैं कि जब साधक के प्राण स्थिर होकर कुण्डलिनी शक्ति शून्य पथ पर अग्रसर होती है तो साधक अनहद नाद अथवा ध्वनि सुनना आरंभ कर देता है जो क्रमशः समुद्र गर्जन, मेघ गर्जन, भेरी गर्जन, मृदंग, शंख, घंटा नाद, किंकणी नाद, वंशी नाद भ्रमर एवं वीणा नाद में परिवर्तित होती है।

शङ्खदुन्दुभिनादं च न शृणोति कदाचन।
काष्ठवज्जायते देह उन्मन्यावस्थया ध्रुवम् ॥ *हठयोग* 4.6

साधक की इस अवस्था में यह स्थिति होती है वह इन ध्वनियों की ओर ध्यान नहीं देता और वह चित्त के नाद में रम जाता है, वह दुनिया के किसी और विषय की परवाह नहीं करता।[9] परन्तु जैसे जैसे साधक को ये सभी शब्द सुनाई देने बन्द हो जाते हैं वैसे वैसे साधक को अपने आत्म स्वरूप का दर्शन आरम्भ हो जाता है। यहाँ यह स्पष्ट करना एक आवश्यकता बन जाती है कि साधक इन विभिन्न प्रकार के नादों को औपाधिक मानता है एवं वह इससे अपना कोई भी सरोकार नहीं रखता। वैयाकरण में इसी को 'स्फोट' कहा है।

सन्त साहित्य को यदि ध्यान से देखे तो इस साहित्य में विशेषकर तीन शब्दों का प्रयोग व्यापक रूप में हुआ है जिसमें सुरति, निरति एवं पछिमी द्वार प्रमुख है उदाहरण के तौर पर कबीर का यह दोहा यहाँ द्रष्टव्य है—

'सुरति समानी निरति में अजपा माहै जाप।
लेख समाना अलेख में यूं आपा माहै आप'

हिन्दी के विभिन्न विद्वानों ने सुरति एवं निरति शब्दों को लेकर अपने अपने मतानुसार अर्थ अभिव्यक्त किया है उनमें से कतिपय कुछ द्रष्टव्य है—

सुरति शब्द का अर्थ

1. स्मृति,
2. स्वर, आशा
3. सुष्ठु रति
4. श्रुति
5. स्वरति
6. प्रेम

7. अन्तर्मुखी वृत्ति
8. तान
9. योगी की असाधारण यौगिक दृष्टि क्षमता जिसके द्वारा वह अदृश्य जगत् की अनुभूति प्राप्त करने में सक्षम होता है।

निरति शब्द का अर्थ

1. नृत्य
2. निष्ठुर रति अथवा प्रेम
3. वैराग्य
4. बहिर्मुखी वृत्ति
5. लय
6. सुरति से भिन्न निर्विकल्पक साधना [10]

इसके अतिरिक्त बाबा राम लाल दास, कबीर, गरीब दास, चरनदास, दरिया दास आदि जिस पश्चिमी द्वार की बात करते हैं वह वस्तुत: प्रत्यगात्मा है जिस का समस्त औपनिषिदक साहित्य वर्णन करता है।

मूल मन्त्र करि बन्ध बिचारी। षट चक्रहि नव सोधहि नारी॥
सोचि के मेरु दण्ड ठहराना । सहज मिलावै प्रान अपाना ॥
बंक नाल गहै मन मूला। बिहंस अष्ट कमल दल फ़ूला॥
पच्छिम दौसा लानि विचारि। संत कुन्जी सन लेहू उधारी॥

यहाँ यह स्पष्ट करने की आवश्यकता बन जाती है कि कबीर आदि सन्त कवि जिस पश्चिमी द्वार की बात करते हैं वह वेदान्त में प्रत्यगात्मा के रूप में जानी जाती है और कबीर आदि सन्त कवियों की कविता के माध्यम से उनका वेदान्त पक्ष ही हमारे सामने आता है।

अत: यह तो बात निश्चित है कि कबीर आदि ने सहज समाधि का ही विधान किया है वह नाथ सिद्ध पन्थ की समाधि से भिन्न है। कबीरदास की उलटबांसियों के माध्यम से भी यही अभिप्राय प्रकट होता है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक बन जाता है कि कबीर की उलटबांसियों में खेचरी मुद्रा[11] का जो विधान किया गया है वह अपने आप में विशिष्ट भी है एवं साथ ही साथ वह हठयोग से भी प्रभावित है। इसमें योगी जीभ को उलट कर अपने कपाल अथवा तालु-मूल में प्रविष्ट कराता है एवं उसकी दृष्टि भ्रू-मध्य भाग में निरुद्ध हो जाती है। योगी की यह अवस्था योगी के अनथक प्रयास का परिणाम ही है जिसके कारण उस पर कोई भी विष अथवा व्याधि असर नहीं कर सकती है। इसी मुद्रा का विशेष रूप व्योम चक्र भी है। यहाँ यह कहना एक आवश्यकता बन जाती है कि ब्रह्मर के सहस्राकार पद्म में योनि नामक एक त्रिकोण आकार का शक्ति केन्द्र

अवस्थित रहता है एवं वह चन्द्रमा का स्थान माना जाता है। यह भी माना जाता है कि इस स्थान में, जहाँ चन्द्रमा विराजित है, उस चन्द्रमा से ऐसी स्थिति में अमृत अथवा सोम क्षरण लगातार होता रहता है। योगी की देह पर जो विष अथवा किसी भी व्याधि का प्रभाव नहीं होता वह इसी कारण ही संभव है और इसी कारण योगी अमर हो जाता है। हठयोग में योगी अथवा साधक को गोमांस भक्षक बताया गया है और वह अमरवारुणी का पान करता है। यहाँ गो का लाक्षणिक अर्थ वाणी एवं अमर वारुणी वह अमृत है[12] जो साधक का पाप नाश करने वाला है। वस्तुत: हठयोग के अनुसार सृष्टिमय बीज ही केवल बीज है, एक ही मुद्रा है जिसे वे खेचरी के नाम से वर्णित करते हैं, एक ही निरालंब देव है, एक मनोन्मनी अवस्था है[14] जिसे कबीर उन्मनि रहनी कहते हैं।[15] वास्तव में यदि देखा जाये तो राजयोग, समाधि, उन्मनि, मनोन्मनि, अमरत्व, लय, तत्त्व, शून्य, परमपद, अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, सहजा, तुर्या आदि सभी शब्द एक ही शब्द के वाचक हैं।[16] सन्त मत जब भी उन्मनि अवस्था की बात करते हैं एवं शब्द प्रमाण के माध्यम से जो चित्र उन्मनि अवस्था का हमारे सामने प्रस्तुत होता है उसका स्वरूप कहीं न कहीं *हठयोग प्रदीपिका* नामक ग्रन्थ के चतुर्थोपदेश की अनुक्रमणिका के समान ही मिलता है। वस्तुत: यह सारा का सारा प्राण एवं मन के स्थिर हो जाने पर संभव होता है। ऐसी स्थिति में, यह तो निश्चित है, कि मन में एक अभूतपूर्व उल्लास एवं आनन्द आता है।[17] ऐसी स्थिति में योगी अथवा साधक आत्मा को शून्य में करके और शून्य को आत्मा में करके निश्चिन्त हो जाता है। यही ब्राह्मी स्थिति है जहाँ योगी के बाहर भी शून्य होता है एवं भीतर भी शून्य ही होता लगता है। परन्तु वास्तविक स्थिति ठीक इसके विपरीत होती है। वह बाहर से भी पूर्ण होता है भीतर से भी पूर्ण होता है। इन्ही संदर्भों में कबीर का वह पद सामने आता है—

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है
बाहर भीतर पानी।
फ़ूटा कुम्भ जल जल हि समाना
यह तथ कहो ग्यानी।
आदे गगना अन्तै गगना
मध्ये गगना भाई।
कहे कबीर करम किस लागै
झूठी एक उपाई।।[18]

कबीर का यह भावानुवाद हमें *हठयोग प्रदीपिका* नामक ग्रन्थ में द्रष्टव्य होता है जो संभवत: कबीर के जन्म से लगभग 200 अथवा 300 साल पहले लिखा जा चुका था।

अन्त:शून्यो बहि शून्य:
शून्य कुम्भ इवाम्बरे।
अन्त: पूर्णो बहि: पूर्णो
पूर्ण: कुम्भ इवार्णवे।।[19]

गुरु की महत्ता

यह तो एक प्रकार से निश्चित है कि सन्त मत के सभी कवि सद्गुरु के महत्त्व को न केवल स्वीकार करते हैं बल्कि वे सद्गुरु को गोविन्द से अधिक महत्व भी देते है। इसका संभव कारण एक यह भी है कि सद्गुरु ही इस जीवन में वह प्रकाशक तत्त्व है जिसने सन्तों को हठयोग के माध्यम से शब्द ब्रह्म तक पहुंचाने का एक मात्र श्रेष्ठतम कार्य किया है। कबीर के अपने शब्दों में इसी तथ्य को कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं—

शब्द गुरु का शब्द है, काया का गुरु काय।
भक्ति करै नित शब्द की, सत्गुरु यौं समुझाय॥

उनके अनुसार शब्द ब्रह्म की नित्यता समझाने का श्रेय केवल एवं केवल गुरु को ही जाता है जिसके परिणामस्वरूप वे शब्द ब्रह्म में निष्णात हो सके हैं। इन्हीं संदर्भों में *शिवसंहिता* के चतुर्थ पटल में वर्णित उन श्लोकों का वर्णन करना भी यहाँ अभिप्रेत होगा जो गुरु की महत्ता को द्योतित करते हैं—

सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च॥[20]

अपि च—

भवेद्वीर्यवती विद्या गुरुवक्त्रसमुद्भवा।
अन्यथा फ़लहीना स्यान्निवीर्याप्यतिदु:खदा॥
गुरुं सन्तोष्य यत्नेन ये वै विद्यामुपासते।
अवलम्बेन विद्यायास्तस्या: फलमवाप्नुयु:॥[21]

इन्हीं संदर्भों मे *शिव संहिता* गुरु के महत्त्व को वर्णित करते हुए यहाँ तक कहती है कि गुरु ही वास्तविक माता, पिता, देव है एवं उसी की सेवा हमें श्रेष्ठ रूप से करनी चाहिये क्योंकि गुरु के प्रसन्न होने पर ही आत्मा सर्व प्रकार के शुभ को प्राप्त कर लेती है। अत: कहने की आवश्यकता नहीं कि सन्तों ने गुरु को गोविन्द से जो अधिक महत्त्व दिया है उसके पीछे विद्या में सिद्धि एक मात्र कारण है। सन्तमार्गी कवि संभवत: इस बात को भी जानते थे कि जिस मार्ग पर वे चल रहें हैं वह गुरुकृपा के माध्यम से ही प्राप्तव्य था अन्यथा नहीं। इसीलिये वे छद्म-गुरु एवं सद्गुरु के बीच भेद स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

जो गुरु ते भ्रम न मिटे, भ्रान्ति न जिसका जाय। सो गुरु झूठा जानिये, त्यागत देर न लाय॥

निष्कर्ष

सन्त मत के प्राय: सभी कवियों किसी न किसी रूप में अपने से पूर्व प्रचलित हठयोग साधना पद्धति से प्रभावित भी थे जिसका अपने काव्य में उन्होंने अपने शब्दों में किया है। यही सन्त मत की विशेषता है। इसी लिये वे प्रत्येक व्यक्ति को अपने अनुभूत विषय का परिणाम बताते हुए कहते हैं

चाह मिटी, चिंता मिटी मनवा बेपरवाह।
जिसको कुछ नहीं चाहिए वह शहनशाह॥

सन्दर्भा:

1. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी: *कबीर:*, पृ.44
2. वही
3. वही पृ. 45
4. वही, *विचार प्रवाह,* पृ 154-155
5. *हठयोग*3-52
6. *बौद्ध गा.* दो. पृ 9
7. सुषुम्ना शाम्भवी शक्ति शेषास्सर्वत्र निरर्थका:। *हठयोग* 5-18
8. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी — *कबीर: हठयोग की साधना,* पृ.45
9. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी — *कबीर: हठयोग की साधना,* पृ.47
10. चौहान, प्रताप सिंह — *सन्त मत में साधना का स्वरूप*, पृ 40
11. "नासनं सिद्ध-सदृशं न कुम्भ केवलोपम:।
    न खेचरी समा मुद्रा न नादसदृशो लय:॥" *हठयोग प्रदीपिका,* 1-45/3.53-54
12. *हठयोग,* 3-46-8
13. *बीजक*, शब्द 82
14. *हठयोग* 1.73
15. 'अवधू, मेरा मन मतवारा। उन्मनि चडया गगन रस पीवै त्रिभुवन भया उजियारा।'—*कबीर ग्रन्थावलि,* पद 72
16. *हठयोग,* 4.3-4
17. *हठयोग,* 4.29-30
18. *कबीर ग्रन्थावलि,* पद 44
19. *हठयोग,* 5.55
20. *शिवसंहिता,* 4.22
21. *शिवसंहिता,* 3.11

हिन्दी प्रवक्ता
वी वी बी आई एस एण्ड आई एस
(पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़)
साधु आश्रम, ऊना रोड
होशियारपुर।

कुण्डलिनीयोगः सिद्धान्त एवं विधि

डॉ. अनुराग शुक्ल

योग भारत की वह अद्भुत विद्या है जिसके द्वारा मनुष्य बन्ध से मोक्ष का अधिकारी बनता है। शरीर पर आत्मा के नियन्त्रण की क्रिया ही योग है। उपनिषद् का उद्घोष है कि यदि साधक ने इस शरीर के पतन के पूर्व ब्रह्म को जान लिया तभी वह बन्धन से मुक्त हो सकता है, अन्यथा वह पुनः शरीरभाव को प्राप्त होगा।[1] इसीलिए साधक को मन समेत पञ्चेन्द्रियों और बुद्धि को आत्मा में स्थिर करना पड़ता है।[2] इसी अवस्था का नाम है योग। यह योग ही उत्पत्ति और लय का कारण है।[3] *माण्डूक्योपनिषद्* की गौडपादकारिका का कथन है कि समस्त योगियों के अभय, दुःखक्षय, प्रबोध और अक्षयशान्ति मन के निग्रह के ही अधीन हैं।[4] *श्वेताश्वतर उपनिषद्* में योगध्यान का विधिवत् निरूपण हुआ है जहाँ साधक को आसन लगाने का उपदेश देते हुए कहा गया है कि 'विद्वान् साधक को शिर, ग्रीवा एवं वक्ष को ऊँचे उठाए हुए, शरीर को सीधा स्थिर करके, समस्त इन्द्रियों को मन द्वारा हृदय में निरुद्ध करके ब्रह्मरूप नौका से समस्त भयावह स्रोतों को पार करना चाहिए'।[5] इसके साथ ही प्राणायाम के प्रयोग भी वहाँ संक्षेप में वर्णित है।[6] साधक के साधना की परीक्षा की प्रणाली भी वहाँ विहित है[7] और अन्ततः योग के फल का भी सुन्दर निरूपण वहाँ इस प्रकार मिलता है—

पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मिके योगगुणे प्रवृत्ते ।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ।।
लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च ।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ।।[8]

श्रीमद्भगवद्गीता के छठें अध्याय में भी योग का सुन्दर निरूपण हुआ है।[9] इस प्रकार यह योग साधना की प्राचीन प्रणाली है जिसके द्वारा साधक अपने प्राणों को नियन्त्रित करके ब्रह्ममय हो जाता है।

मानवशरीर की सम्पूर्ण इन्द्रियव्यवस्था प्राणव्यापार पर अवलम्बित है। मन और प्राण का परस्पर योगक्षेम एक जैसा ही है, इसीलिए प्राण मन की एकाग्रता में सर्वाधिक समर्थ कहा गया है और प्राणायाम द्वारा समस्त शारीरिक दोषों के नाश का उपाय योगियों ने ढूँढा है। योगिराज वसिष्ठ का उपदेश है कि 'चित्तरूपी वृक्ष के दो बीज हैं—प्राणस्पन्दन और वासना, इनमें से एक के भी क्षीण होने से दूसरा भी क्षीण हो जाता है'।[10] इसप्रकार प्राणायाम समस्त इन्द्रियों की वृत्ति को निरुद्ध करते हुए चित्त की एकाग्रता का साधक है। महर्षि पतञ्जलि का भी निर्देश है कि साधक को प्राण के प्रच्छर्दन और विधारण द्वारा चित्त को एकाग्र करना चाहिए।[11] भगवान्

मनु ने भी प्राणों के निग्रह से इन्द्रियों के दोषों के दहन का उपदेश दिया है।[12] यहाँ प्राण न तो मात्र श्वास-प्रश्वास है और न ही आत्मतत्व ही है, बल्कि श्वासप्रश्वास का आधारभूत भौतिक अतः जडतत्व है। उपनिषदें भी प्राण के महत्व को अतितरां प्रकाशित करती हैं[13] और प्राण का रयि के साथ मिथुन प्रतिपादन करती हैं।[14] यह प्राण समष्टिरूप से ब्रह्माण्ड का और व्यष्टिरूप से मानवपिण्ड का संचालक है। मानवशरीर में प्राण स्थान व कार्य के भेद से दश प्रकार का है जिनमें पञ्चप्राण प्रधान प्रतिपादित हैं।[15] इसप्रकार प्राण पर अधिकार करके मनुष्य शरीरेन्द्रिय व मन का स्वामी हो जाता है।

प्राणायाम के तीन प्रसिद्ध भेद हैं—रेचक, पूरक और कुम्भक। पूरक में प्राण को अपान में संगत किया जाता है, रेचक में अपान को प्राण द्वारा ऊपर खींचा जाता है जबकि कुम्भक में प्राण और अपान दोनों की गति को समानवायु के स्थानभूत नाभि में अवरुद्ध कर दिया जाता है जिससे रज और तम का कल्मष दग्ध होकर सत्त्व का प्रकाश प्रवृद्ध हो जाता है और मन को एकाग्र कर देता है। *गीता* में भी इसी तथ्य को सुन्दरता के साथ निरूपित किया गया है।[16]

शरीर की प्राणिकशक्ति जिनसे होकर प्रवाहित होती है उन्हें 'नाडियाँ' कहते हैं। *शाण्डिल्य उपनिषद्* में नाडियों की शरीर में उपस्थिति अश्वत्थवृक्ष के पत्रों के असंख्य सूक्ष्म तन्तुओं सदृश बताई गई है।[17] नाडी शब्द गत्यर्थक 'नद' धातु से निष्पन्न है। उपनिषदों में नाडियों का उल्लेख प्राप्त होता है। *कठोपनिषद्* में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि हृदय की एक सौ एक नाडियों में से एक मूर्धा की ओर निकलती है जिससे उत्क्रमण करने वाला मनुष्य तो अमृतत्व को प्राप्त होता है जबकि शेष मनुष्य को नाना प्रकार की योनियों में ले जाती हैं।[18] इसपर भाष्य करते हुए आचार्य शंकर ने स्पष्टरूप से योगनाडियों में से अन्यतम व श्रेष्ठतम—सुषुम्ना का नाम लिया है।[19] *छान्दोग्य उपनिषद्* में हृदय की नाडियों की अधिक विस्तार से चर्चा है। तदनुसार हृदय की नाडियाँ जो पिङ्गलवर्ण और सूक्ष्मरस की हैं, में आदित्य की रश्मियाँ व्याप्त हैं।[20] इन नाडियों में उपस्थित प्राण वाला साधक पापरहित व तेजसम्पन्न होता है[21] और इन्हीं में से एक का आश्रय लेकर अमर हो जाता है। इसी उपनिषद् में आदित्य की रश्मियों की संज्ञा मधुनाडी से मिलती है।[22] *बृहदारण्यक उपनिषद्* में हृदय की हितानाम्नी नाडियों की चर्चा है।[23]

नाडियों की संख्या का परिगणन कठिन है। योग व तन्त्र के ग्रन्थों में इनकी संख्या पृथक्-पृथक् निर्दिष्ट है। *भूतशुद्धि तन्त्र* में इनकी संख्या 72000 बताई गई है। *प्रपञ्चसारतन्त्र* 300000 संख्या का निर्देश करता है जबकि *शिवसंहिता* इनकी संख्या 350000 बताता है। किन्तु इनमें से 15 ही प्रमुख है—सुषुम्ना, इडा, पिङ्गला, गान्धारी, हस्तजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, शूरा, कुहू, सरस्वती, वारुणी, अलम्बुषा, विश्वोदरी, शङ्खिनी और चित्रा।[24] इनमें भी आद्य तीन योग की दृष्टि से अतिशय महत्वपूर्ण हैं जिनमें सुषुम्ना सर्वाधिक विशिष्ट है। ये तीनों क्रमशः सरस्वती, गंगा और यमुना भी कही जाती हैं। सुषुम्ना मूलाधारचक्र से आरम्भ करके ब्रह्मरन्ध्र तक विस्तृत है जो कि अग्निसदृश रक्तवर्णा है। इसके भीतर सूर्य के समान देदीप्यमान राजसिक गुणों वाली

वज्रनाडी है, जिसके भीतर पाण्डुवर्णा सात्त्विकस्वभावा चित्रा या चित्रणी नाडी उपस्थित है। इसके भीतर का रन्ध्र ही ब्रह्मनाडी है जिससे होकर जाग्रत् कुण्डलिनी सहस्रार तक पहुँचती है। चित्रणी के निचले द्वार को ही ब्रह्मद्वार कहा जाता है। यही स्वर्ग का पथ प्रशस्त करने वाली तथा अमृतत्व की प्रापिका और मोक्षप्रदा नाडी है। जब साधक का प्राण सुषुम्ना से होकर प्रवाहित होता है तो चित्त एकाग्र हो जाता है। यह अवस्था 'उन्मनी अवस्था' कही जाती है जो साधकों की सर्वोच्च स्थिति है।

ब्रह्मनाडी में बहुत से शक्तियों के सूक्ष्म केन्द्र हैं जिन्हे चक्र या कमल कहते हैं। ये चक्र पाँचों तत्त्वों, तन्मात्राओं, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, प्राणों, अन्तःकरण, समस्त वर्णों-स्वरों और सातों लोकों के मण्डल और नानाप्रकार के प्रकाश और विद्युत् से युक्त हैं। साधारणावस्था में ये अविकसित तथा अधोमुख कमलसदृश रहते हैं किन्तु ध्यानादि साधनों द्वारा उत्तेजित होकर जब ये ऊर्ध्वमुख और विकसित होते हैं तब उनकी अलौकिक शक्तियों का विकास हो जाता है। चक्रों की संख्या तन्त्रग्रन्थों में पृथक् पृथक् बताई गई है। ब्रह्मानन्द स्वामी नें *अद्वैतमार्त्तण्ड* में 20 चक्रों का वर्णन किया है—आधार, कुलदीप, वज्र या यज्ञ, स्वाधिष्ठान, रौद्र, कराल, गह्वर, विद्याप्रद, त्रिमुख, त्रिपद, कालदण्डक, उकार, कालद्वार, करङ्गल, दीपक, आनन्दललिता, मणिपूर, नाकुल, कालभेदन और महोत्साह।[25] ग्रन्थों में अन्य अनेकों चक्रों के भी नाम प्राप्य हैं तद्यथा—परम, पादुकं, पदं, कल्पजाल, पोषक, लोलं, नादावर्त, त्रिपुट, कङ्कालक, पुटभेदन, महाग्रन्थिविराका, बन्धज्वलन, अनाहत, यन्त्रपुट, व्योमचक्र, बोधन, ध्रुव, कलाकन्दलक, कुलकोलाहल, हालावर्त, महद्भय, घोरावैभव, विशुद्धि, कन्थम्, उत्तमम्, पूर्णकम्, आज्ञा, काकपुत्तम्, शृङ्गातम्, कामरूप, पूर्णगिरि, महाव्योम, शक्तिरूप आदि।[26] तथापि *योगचूडामणि*, *योगशिखा* उपनिषद् जैसे महनीय ग्रन्थों में षट्चक्रों का ही विवरण प्राप्त होता है—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा। इनके अतिरिक्त परम प्राप्तव्य चक्र के रूप में सहस्रारचक्र का वर्णन तन्त्रग्रन्थों में प्राप्त होता है। इनका संक्षिप्त वर्णन यहाँ अपेक्षित है।

1. मूलाधारचक्र— शरीर में गुदामूल से दो अंगुल ऊपर और उपस्थमूल से दो अंगुल नीचे, रक्तप्रकाश से उज्ज्वलित, चतुर्दल कमल की आकृतिवाला, गंधगुणयुक्त, अपानवायुस्थानीय, घ्राणेन्द्रिय एवं मलत्यागेन्द्रिय स्थानीय, भूलोक वाला मूलाधारचक्र विद्यमान है। यह शरीरस्थ समस्त नाडियों का मूलस्थान है। इसके मध्य इच्छा, ज्ञान व क्रिया स्वरूप त्रिकोण है जिसके मध्य कोटिसूर्यसमप्रभ स्वयम्भू लिङ्ग विद्यमान है जिसे परिवेष्टित कर मृणालसूत्रवत् सूक्ष्म सार्धत्रिवलयाकार विद्युत्तुल्यप्रभ कुण्डलिनी रहती है।[27] इस त्रिकोण के मध्यकोण से सरस्वतीरूपा सुषुम्ना, वामकोण से गङ्गारूपा इडा तथा दक्षिणकोण से यमुनारूपा पिङ्गला निकलती हुई मुक्तत्रिवेणी का निर्माण करती हैं। तन्त्रों के अनुसार इस त्रिकोण योनिमण्डल के मध्य में तेजोमय रक्तवर्ण क्लीं बीजरूप कन्दर्प नामक स्थिर वायु विद्यमान है जिसके मध्य में ब्रह्मनाडी के मुख में स्वयंभूलिङ्ग है। इस त्रिकोण को त्रैपुरकोण भी कहते हैं।[28] इस चक्र की वृत्तियाँ परमानन्द, सहजानन्द, योगानन्द एवं वीरानन्द हैं। *शारदातिलकतन्त्र* में भी इस चक्र की फलश्रुति यही निर्दिष्ट है।[29] इस चक्र पर ध्यान करने से साधक को आरोगयता, आनन्दचित्तता तथा प्रबन्धदक्षता प्राप्त होती है।

2. स्वाधिष्ठानचक्र— मूलाधारचक्र से दो अंगुल ऊपर, सिन्दूरी प्रकाश से प्रकाशित, षड्दल कमल के सदृश, रस गुण, व्यानवायु, रसनेन्द्रिय तथा उपस्थेन्द्रिय स्थानीय, भुवःलोक वाले स्वाधिष्ठानचक्र की अवस्थिति है।[30] इस चक्र पर ध्यान केन्द्रित करने पर साधक को अहंकारादि दोषों के नाश, काव्यरचना तथा सरस्वती की सिद्धिरूप फल की प्राप्ति होती है।[31]

3. मणिपूरचक्र— स्वाधिष्ठान से ऊपर नाभिमूल में मणिपूरचक्र की उपस्थिति है जो नीलवर्ण के प्रकाश से प्रकाशित, दशदल कमल की आकृति वाला, रूप गुण वाला, समानवायुस्थानीय, नेत्रेन्द्रिय एवं पाद स्थानीय तथा स्वः लोक वाला है।[32] इस चक्र पर ध्यान करने से साधक को मोहनाश तथा शरीरव्यूह का ज्ञान हो जाता है।[33]

4. अनाहतचक्र— मणिपूर से ऊपर हृदय के पास सूर्यसदृश प्रकाश से उद्भासित, द्वादशदल कमल तुल्य, स्पर्श गुण वाला, प्राणवायुस्थानीय, त्वगिन्द्रिय एवं पाणीन्द्रिय स्थानीय, महःलोक वाला अनाहतचक्र है जिसपर ध्यान लगाने से साधक को कपटादि समस्त दुर्वृत्तियों से मुक्ति मिल जाती है।[34] *शिवतन्त्रसार* में कहा गया है कि इस चक्र में उत्पन्न होने वाली अनाहत ध्वनि ही सदाशिव है।[35]

5. विशुद्धचक्र— अनाहत के ऊपर कण्ठदेश में षोडशदल कमल सदृश, धूम्रवर्ण वाले, शब्द गुण वाले, उदानवायु स्थानीय, श्रोत्रेन्द्रिय एवं वाक् स्थानीय, जनःलोक वाले विशुद्धचक्र का अस्तित्व है।[36] यहाँ पर ध्यान करने से साधक को मन की निर्मलता के लाभ के साथ साथ सरस्वती की भी सिद्धि हो जाती है।[37]

6. आज्ञाचक्र— विशुद्ध के ऊपर भ्रूमध्य में श्वेतप्रकाश से प्रकाशित, द्विदल कमल के समान आज्ञाचक्र विद्यमान है। इसी में मन का निवास साधकों ने माना है।[38]

7. सहस्रारचक्र— तालु के ऊपर मस्तिष्क में ब्रह्मरन्ध्र से ऊपर सर्वशक्ति के केन्द्रस्वरूप सहस्रारचक्र है जो शतदल कमल है तथा सर्ववृत्तिनिरोधस्वरूप असम्प्रज्ञात समाधि की योग्यता साधक को प्रदान करने वाला है।[39]

इन चक्रों के अतिरिक्त तन्त्रग्रन्थों में विशुद्धचक्र के ऊपर द्वादशदल सूक्ष्म ललनाचक्र का वर्णन किया है। इसकी वृत्तियों में श्रद्धा, सन्तोष, अपराध, दम, मान, स्नेह, शुद्धान्त, अरति, सम्भ्रम तथा ऊर्मि का परिगणन किया गया है। पुनः आज्ञाचक्र के ऊपर दो अन्य सूक्ष्म चक्रों का भी वर्णन मिलता है—मनस् और सोम। मनस् चक्र षड्दल जबकि सोमचक्र षोडशदल कहा गया है।

सम्प्रति कुण्डलिनीशक्ति पर विचार अपेक्षित है। *योगिनीहृदयतन्त्र* में कुण्डलिनी शक्ति को इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

पिण्डं कुण्डलिनी शक्तिः पद्मं हंसः प्रकीर्तितः ।
रूपं बिन्दुरिति ख्यातं रूपातीतस्तु चिन्मयः ।।

अर्थात् यह जीवपिण्ड ही कुण्डलिनीशक्ति है जिसके ध्यान द्वारा साधक परमतत्व तक पहुँचते हैं।[40] भास्करार्य ने मूलाधार पर विद्यमान कारणबिन्दु को ही कुण्डलिनीशक्ति बताया है।[41] तन्त्रशास्त्रविदों नें कुण्डलिनीशक्ति को विश्वजननव्यापारा कहा है।[42] यह कुण्डलिनी ही ईश्वर की परा शक्ति और जीव की बैखरीशक्ति है। समस्त चक्रों की शक्तियाँ इसी की शक्तियाँ हैं। यही मनुष्य के शरीर में विद्यमान शब्दब्रह्म है। यही मूलाधार में शक्ति, ध्वनि, नाद, निरोधिका, अर्धेन्दु और बिन्दु के रूप में रहती है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी इसी के रूप हैं जो क्रमशः अव्यक्त, ईश्वर, हिरण्यगर्भ और विराट् हैं। भास्करार्य का कथन है कि अविभागावस्थित कारण बिन्दु के भिद्यमान होने पर रव की उत्पत्ति होती है जिसे लोक में शब्दब्रह्म कहा जाता है।[43] इस शब्दब्रह्म का बखान वेद भी करते हैं।[44]

अब प्रश्न यह है कि यह कुण्डलिनीशक्ति जो कि जीव में सामान्यतः सुप्तवत् है उसे सक्रिय कैसे किया जाय? यह शक्ति शरीर के शुद्ध और सूक्ष्म होने पर सात्त्विक विचार, शुद्ध अन्तःकरण, ईश्वर की सच्ची भक्ति और परिपक्व वैराग्य की अवस्था में एकाग्रता तथा निश्चल ध्यान से ही जाग्रत् हो सकती है। इसके लिए योगियों ने प्राणायाम और विविध मुद्राओं का उपदेश दिया है। प्राणायामों में भस्त्रिका, कपालभाति, सूर्यभेदी प्राणायाम आदि प्रमुख हैं। मुद्राओं में महाबन्ध, महावेध, महामुद्रा, खेचरीमुद्रा, विपरीतकरणीमुद्रा, अश्विनीमुद्रा, योनिमुद्रा, शक्तिचालिनीमुद्रा आदि विशेष हैं।

जब साधक युक्तियुक्त आसन में योगोचित मुद्रा में एकान्त में शुद्धभाव से अभ्यास करता है तो शनैः शनैः उसके श्वास प्रश्वास सुषुम्ना स्वर में प्रवाहित होने लगते हैं और उसकी सात्त्विक प्रवृत्तियाँ प्रवृद्ध होकर चित्त को एकाग्र कर देती हैं। तब साधक को चाहिए कि वह ऐसी भावना करे कि उसके प्राण मूलाधार में सुषुम्ना में प्रवेश कर रहे हैं और कुण्डलिनीशक्ति जाग्रत् हो रही है। इस प्रकार कुछ मास या वर्ष व्यतीत होने पर प्राणोत्थान भली प्रकार से होने लगता है और चक्रभेदन आरम्भ हो जाता है। अब प्रत्येक चक्र में स्थिरता के साथ ध्यान करते हुए साधक अभीष्ट की ओर बढ़ने लगता है। प्रत्येक चक्र के अनुभवों से आगे बढ़ता हुआ साधक जब आज्ञाचक्र पर पहुँचता है तब उसे अपूर्व अनुभव होता है क्योंकि यहाँ प्राण तथा मन के स्थिर हो जाने के कारण सम्प्रज्ञात समाधि की योगयता उसे प्राप्त होती है। यहीं पर तीनों नाडियों का संगम होकर युक्तत्रिवेणी का निर्माण होता है और इसमें स्नान करने वाला साधक सर्वपापों से मुक्त हो जाता है।[45]

यह चक्रभेदन एक दीर्घकालिक और धैर्यगम्य प्रक्रिया है। तान्त्रिकमार्ग चक्रों की विशिष्टताओं पर भावना के साथ ध्यान करने का मार्ग है जो दीर्घपथ है। आध्यात्मिकों का प्रयत्न चक्रों को ध्येय बनाकर प्रवेश करना मात्र ही होता है क्योंकि उनका परमलक्ष्य परमतत्व ही होता है। यह कुण्डलिनीयोग का मार्ग आडम्बर, बनावट आदि से गोपन का मार्ग है जिसमें अपने अनुभवों को गुप्त रखना एवं साधारणावस्था में रहना ही श्रेयस्कर होता है। ब्रह्मनिष्ठ योगी के विषय में कहा भी गया है—

यं न सन्तं न चासन्तं नाश्रुतं न बहुश्रुतम् ।
न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद किश्चत्स ब्राह्मणः ।।

कुण्डलिनीयोग की इस रहस्यमयी विद्या के रहस्य का किञ्चित् उद्घाटन इस शोधपत्र का उद्देश्य है।

सन्दर्भा:

1. इह चेदशकद्बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्रसः ।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ।। —*कठोपनिषद्* 2/3/4
2. यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ।। —वही 2/3/10
3. तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ।। —वही 2/3/11
4. मनसो निग्रहायत्तमभयं सर्वयोगिनाम् ।
दुःखक्षयः प्रबोधश्चाप्यक्षया शान्तिरेव च ।। —*गौडपादकारिका*, *अद्वैत प्रकरण*, 40
5. निरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य ।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ।। —*श्वेताश्वतरोपनिषद्*, 2/8
6. प्राणान्प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत।
दृष्ट्वाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान् मनो धारयेताप्रमत्तः ।। —वही 2/9
7. समे शुचौ शर्करावह्निबालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः ।
मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत् । —वही 2/10
8. वही 2/12, 13
9. *गीता* 6/11-17
10. द्वे बीजे चित्तवृक्षस्य प्राणस्पन्दनवासने ।
एकस्मिंश्च तयोः क्षीणे क्षिप्रं द्वे अपि नश्यतः ।।
11. प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ।। —*योगसूत्र* 1/34
12. दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ।। —*मनुस्मृति* 6/71
13. सर्वाणि ह इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते —*छान्दोग्योपनिषद्* 1/11/5
प्राणं देवा अनुप्राणन्ति। .....प्राणो हि भूतानामायुः। तस्मात्सर्वायुषमुच्यते । —*तैतिरीयोपनिषद्* 2/3/1
प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। —वही 3/1
14. स मैथुनमुत्पादयते रयिं च प्राणं च । —*प्रश्नोपनिषद्* 1/4

15. हृदि प्राणो वसेन्नित्यमपानो गुह्यमण्डले ।
समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः।।
व्यानो व्यापी शरीरे तु प्रधानाः पञ्चवायवः। —*गोरक्षसंहिता* 30 ।।

16. अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुध्वा प्राणयामपरायणाः ।।
अपरे नियताहाराः प्राणन्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ।। —*गीता* 4/29, 30

17. *शाण्डिल्योपनिषद्*, प्रथम अध्याय ।

18. शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका ।
मयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ।। —*कठोपनिषद्* 2/3/16

19. वही, *शाङ्करभाष्य* ।

20. *छान्दोग्योपनिषद्*, 8/6/1

21. वही 8/6/3

22. वही 3/1/2

23. *बृहदारण्यकोपनिषद्*, 4/3/20

24. *संगीतरत्नाकर* 144-156

25. द्र.— *The Serpent Power* : Sir John Woodrffe. p. 152

26. वही ।

27. मूलाधारे त्रिकोणाख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मके ।
मध्ये स्वयंभूलिङ्गन्तु कोटिसूर्यसमप्रभम् ।।
तद्बाह्ये हेमवर्णाभं व स वर्णचतुर्दलम् । —*तन्त्रसार*
अस्योर्ध्वे विषतन्तुसोदरलसत्सूक्ष्मा जगन्मोहिनी
ब्रह्मद्वारमुखं सुखेन मधुरं साच्छादयन्ती स्वयम् ।
शङ्खावर्तनिभा नवीनचपलामालाविलासास्पदा
सुप्ता सर्पसमा शिरोपरिलसत्सार्धत्रिवृत्ताकृतिः ।। —*श्रीतत्त्वचिन्तामणि षट्चक्रभेदः*
मूलाधाराम्बुजारूढा —*ललितासहस्रनाम* 106

28. वज्राख्या वक्त्रदेशे विलसति सततं कर्णिकामध्यसंस्थम्
कोणं तत् त्रैपुराख्यं तडिदिव विलसत्कोमलं कामरूपम् ।
कन्दर्पो नाम वायुर्विवसति सततं तस्य मध्ये समन्तात्
जीवेशो बन्धुजीवप्रकरमभिहसन्कोटिसूर्यप्रकाशः।।

तन्मध्ये लिङ्गरूपी द्रुतकनककलाकोमलः पश्चिमास्यो
ज्ञानध्यानप्रकाशः प्रथमकिशलयाकाररूपः स्वयम्भूः ।। — *श्रीतत्त्वचिन्तामणि षट्चक्रभेदः*

29. महानिर्वाण तन्त्र पर तर्कालङ्कार का भाष्य—
गुदलिङ्गान्तरे चक्रमाधारं तु चतुर्दलम्।
परमः सहजस्तद्वदानन्दो वीरपूर्वकः।।
योगानन्दश्च तस्य स्यादीशानादिदले फलम्।। —*शारदातिलकतन्त्र*, 25

30. षड्दले वैद्युतनिभे स्वाधिष्ठानेऽनलत्विषि ।
वभमैर्यरलैर्युक्ते वर्णैः षड्भिश्च सुव्रत ।।

31. स्वाधिष्ठानाख्यमेतत्सरसिजममलं चिन्तयेद्यो मुनीन्द्रः
तस्याहंकारदोषादिकसकलरिपुः क्षीयते तत्क्षणेन ।
योगीशः सोऽपि मोहाद्भुततिमिरचये भानुतुल्यप्रकाशो
गद्यैः पद्यैः प्रबन्धैर्विरचयति सुधाकाव्यसन्दोहलक्ष्मीम् ।। —*षट्चक्रक्रमः*

32. तदूर्ध्वे नाभिदेशे तु मणिपूरं महाप्रभम्।
मेघाभं विद्युदाभश्च बहुतेजोमये ततः।।
मणिवद्भिन्नं तत्पद्मं मणिपूरं तथोच्यते।
दशभिश्च दलैर्युक्तं डादिफान्ताक्षरान्वितम् ।।
शिवेनाधिष्ठितं पद्मं विश्वालोकनकारणम् ।

33. नाभौ दशदलं चक्रं मणिपूरक संज्ञकम्।
सुषुप्तिरत्र तृष्णा स्यादीर्ष्या पिशुनता तथा।।
लज्जा भयं घृणा मोह : कषायोऽथ विषादिता।। —*शारदातिलकतन्त्र*, 25

34. हृदयेऽनाहतं चक्रं दलैर्द्वादशभिर्युतम्।
लौल्यं प्रनाशः कपटं वितर्कोऽप्यनुतापिता।।
आशा प्रकाशश्चिन्ता च समीहा ममता ततः।
क्रमेण दम्भो वैकल्यं विवेकोऽहंकृतिस्तथा।। —*शारदातिलकतन्त्र*, 25

35. शब्दं ब्रह्मेति तं प्राह साक्षाद्देवः सदाशिवः ।
अनाहतेषु चक्रेषु स शब्दः परिकीर्त्यते ।। —*परापरिमलोल्लासः* ।

36. तदूर्ध्वन्तु विशुद्धाख्यं दलषोडशपङ्कजम् ।
स्वरैश्च षोडशैर्युक्तं धूम्रवर्णैर्महत्प्रभम् ।।

37. फलान्येतानि पूर्वादिदलस्थस्थात्मनो जगुः।
कण्ठेऽस्ति भारती स्थानं विशुद्धिः षोडशच्छदम्।।
तत्र प्रणव उद्गीथो हुं फट् वषट् स्वधा तथा।
स्वाहा नमोऽमृतं सप्त स्वराः षड्जायदो विषय।।
इति पूर्वादिपत्रस्थे फलान्यात्मनि षोडश। —*शारदातिलकतन्त्र*, 25

38. आज्ञानामाम्बुजं तद्भिमकरसदृशं ध्यानधामप्रकाशम्
हक्षाभ्यां वै कलाभ्यां प्रविलसितवपुर्नेत्रपत्रं सुशुभ्रम् ।
तन्मध्ये हाकिनी सा शशिसमधवला वक्त्रषट्कं दधाना
विद्यामुद्रां कपालं डमरुजपवटीं बिभ्रती शुद्धचित्ता।।
एतत्पद्मान्तराले निवसति च मनः सूक्ष्मरूपं प्रसिद्धम् । — *श्रीतत्त्वचिन्तामणि*, *षष्ठप्रकाशः*

39. सहस्रारे हिमनिभे सर्ववर्णविभूषिते।
अकथादि त्रिरेखात्म हळक्षत्रयभूषिते।।
तन्मध्ये परबिन्दुञ्च सृष्टिस्थितिलयात्मकम्।
एवं समाहितमना ध्यायेन्यासोऽयमान्तरः ।। —*तन्त्रसासारोक्त मातृकान्यासः*

40. ध्यायेत्कुण्डलिनीं सूक्ष्मां मूलाधारनिवासिनीम्।
तामिष्टदेवतारूपां सार्धत्रिवलयान्वितीम् ।।
कोटिसौदामिनीभासां स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिनीम् ।
तामुत्थाप्य महादेवीं प्राणमन्त्रेण साधकः ।।
उद्यद्दिनकरोद्योतां यावच्छ्वासं दृढासनः ।
अशेषाशुभशान्त्यर्थं समाहितमनाश्चिरम् ।।
तत्प्रभापटलव्याप्तं शरीरमपि चिन्तयेत् । —*तन्त्रसार*

41. अध्यात्मं तु कारणबिन्दुः शक्तिपिण्डकुण्डल्यादिशब्दवाच्यो मूलाधारस्थः।—*ललितासहस्रनाम*, 132 पर भास्करार्य की टीका।

42. शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमाम्
ज्ञात्वेत्थं न पुनर्विशन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वं नराः ।

43. बिन्दोस्तस्माद्विद्यमानादव्यक्तात्मा रवोऽभवत् ।
स रवः श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेति गीयते ।।

44. चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ।। —*ऋग्वेद* 10 मण्डल

45. इडा भागीरथी गङ्रगा पिङ्गला यमुना नदी ।
तयोर्मध्यगता नाडी सुषुम्णाख्या सरस्वती ।।
त्रिवेणी संगमो यत्र तीर्थराजः स उच्यते ।
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। —*ज्ञानसंकलिनीतन्त्र*

एसो. प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष- संस्कृतविभाग
मदनमोहन मालवीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कालाकाँकर, प्रतापगढ़- 229408

गीता में पञ्चमहाभूत की ब्रह्मरूपता की साधना एवं पर्यावरण संरक्षण का दिव्य दर्शन

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद शर्मा

महाभारत में पञ्च महाभूत एवं भूत (जीव) शब्दों की व्याख्या करते हुए स्पष्ट शब्दों में इनकी ब्रह्ममयता प्रतिपादित की गई है कि समस्त प्राणियों की उत्पत्ति एवं प्रलय के स्थान को पञ्चमहाभूत कहा गया है। ये पाँच महाभूत पृथिवी, वायु, आकाश, जल तथा तेज है। प्राणियों का शरीर इन्हीं पञ्च महाभूतों का कार्य समूह है। कार्यरूप में परिणत भूतगण सदा लीन होते हैं और प्रकट होते रहते हैं। सूक्ष्म भूतों से महाभूत प्रकट होते हैं तथा उसी में पुनः लय को प्राप्त करते हैं जैसे समुद्र से लहरे प्रकट होकर उसीमें लीन होती है उसी प्रकार परमात्मा से समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं तथा उसीमें लीन होते हैं। जैसे कछुआ अपने अङ्गों को फैलाकर फिर समेट लेता है उसी प्रकार समस्त प्राणियों के शरीर आकाशादि पञ्च महाभूतों से उत्पन्न होते हैं तथा फिर उन्हीं में लीन हो जाते हैं—

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्।
महाभूतानि भूतानां सर्वेषां प्रभवाप्ययौ।।
स तेषां गुणसंघातः शरीरं भरतर्षभ।
सततं हि प्रलीयन्ते गुणास्ते भवन्ति च।।
ततः सृष्टानि भूतानि तानि यान्ति पुनः पुनः।
महाभूतानि भूतेभ्यः ऊर्मय सागरे यथा।।
प्रसारयित्वेहाङ्गानि कूर्मः संहरते यथा।
तद्वद् भूतानि भूतानामल्पीयांसि स्थवीयसाम्।।
आकाशात् खलु यो घोषः संघातस्तु महीगुणः।
वायोः प्राणो रसस्त्वदभ्यो रूपं तेजस उच्यते।।
इत्येतन्मयमेवैतत् सर्वं स्थावरजङ्गमम्।
प्रलये च तमभ्येति तस्मादुद्दिश्यते पुनः।।
महाभूतानि पञ्चैव सर्वभूतेषु भूतकृत्।
विषयान् कल्पयामास यस्मिन् यदनुपश्यति।।

— *महाभारत*, मोक्षधर्मपर्व, 275.3-9

जीवों के शरीर में आकाश का गुण शब्द है, पृथ्वी का गुण या कार्य स्थूल शरीर है, वायु का प्राण, जल का रस तथा तेज का रूप गुण है।

इस प्रकार यह स्थावर जङ्गम शरीर पञ्चभूतमय ही है। प्रलयकाल में यह परमात्मा में ही लीन होता है तथा सृष्टि के आरम्भ से पुनः उन्हीं से प्रकट होता है। सम्पूर्ण भूतों के कर्त्ता ईश्वर ने समस्त प्राणियों में पञ्च महाभूतों का ही विभागपूर्वक समावेश किया है। देह के भीतर भूतों के अनुसार मनुष्य इन्द्रियों के माध्यम से विषयों को देखता है।

पञ्च महाभूतों के साथ जीव एवं शरीर के सम्बन्ध को कई प्रकार के रूपकों से समझा गया है। प्रकृति एवं पुरुष के आधार पर सम्पूर्ण जगत् का विवेचन प्राचीन वैदिक दर्शन में बड़ी दृढ़तापूर्वक सिद्धान्तित है। प्रकृति का उपास्य रूप इस लेख में विवेच्य है। *वामन पुराण* (14.26) में प्रकृति का स्मरण इस प्रकार किया गया है—

पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथापः
स्पर्शी च वायुर्ज्वलितं च तेजः।
नभः सशब्दं महता सहैव
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।

गन्धयुक्त पृथ्वी, रस युक्त जल, स्पर्श युक्त वायु, प्रज्वलित तेज, शब्दसहित आकाश और महत् तत्त्व—ये सभी मेरे प्रातःकाल को मङ्गलमय करें।

भारतीय दार्शनिक चिन्तन परम्परा में सांख्य-योग को प्राचीन दर्शन माना जाता है। महाभारत के *गीता* नामक प्रख्यात अंश में प्रकृति एवं पुरुष को मूल तत्त्व माना गया है। *गीता* में प्रतिपादित प्रकृति एवं पुरुष की अवधारणा को मूलतः वैदिक माना जाता है। ब्रह्माण्ड के विवेचन से पूर्व हमें पिण्ड रूपी शरीर का तथा उसके स्वामी देही आत्मा को ही समझना चाहिए। ये ही सांख्य की दृष्टि में प्रकृति एवं पुरुष तत्त्व हैं। इनके सामञ्जस्य से सृष्टि होती है, विकास की प्रक्रिया अनवरत रहती है। इसके असन्तुलन को ही लय या विनाश समझते हैं। शरीर को क्षेत्र तथा उसके ज्ञाता को क्षेत्रज्ञ कहा गया है—

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।। ***—गीता 13.1***
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम।। ***—गीता 13.2***

इन दोनों के ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ ज्ञान कहा गया है। क्षेत्रज्ञ परमात्मा रूपी भगवान् का अंश है, जीव रूप में जिसे आत्मा या पुरुष कहा गया है। पुनः कहते हैं कि इन दो मूल अनादि तत्त्वों को समझना चाहिए—

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।। ***—गीता 3.19***

रागद्वेष आदि विकार तथा त्रिगुणात्मक पदार्थ प्रकृति से ही सम्भव होते हैं। वस्तुत: प्रकृति के आठ भेद गीताकार कहते हैं—

भूमिरापोऽनलो वायु: खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।। *— गीता 7.4*

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश (पञ्चमहाभूत) मन, बुद्धि तथा अहंकार—ये आठ प्रकृति (अपरा) के भेद हैं जो जड़ रूप मानी गई है तथा जीव परा प्रकृति है जिससे समस्त संसार का धारण होता है—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।। *— गीता 7.5*

संसार में प्रकृति कार्यरूपा महाभूत एवं गुणों की दृष्टि से दश प्रकार की है—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध।

करणरूपा 13 प्रकार की हैं—5 ज्ञानेन्द्रिय, 5 कर्मेन्द्रिय एवं मन, बुद्धि तथा अहंकार।

गीता स्पष्टत: कहती है—

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतु: प्रकृतिरुच्यते।
पुरुष: सर्वदु:खानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।। *—गीता 13.20*

अर्थात् कार्य एवं करण के कर्तृत्व का हेतु प्रकृति कही जाती है तथा सुख एवं दु:खों के भोक्तृत्व का हेतु पुरुष माना गया है। भोक्तृभाव के कारण पुरुष 5 ज्ञानेन्द्रिय एवं मन के द्वारा विषयों का उपसेवन करता है—

श्रोत्रं चक्षु: स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते।। *—गीता 15.9*

परमात्मा जीवों के अन्दर विद्यमान होने पर अज्ञान से अशुद्ध अन्तःकरण के कारण देखा नहीं जा सकता है, वैसे ही सम्पूर्ण प्रकृति के महाभूतों में तथा जीवों में परमात्मा का होना ही वास्तविक वैदिक सिद्धान्त गीताकार स्थापित करते हैं। वे स्पष्टत: पञ्च महाभूतों तथा सूर्य एवं चन्द्र आदि में देवत्व को सिद्ध करते हैं—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्च मसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्। *—गीता 15.12*

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधी: सर्वा: सोमो भूत्वा रसात्मक:।। *— गीता 15.13*

सूर्य में स्थित तेज जो जगत् को प्रकाशित करता है, जो तेज चन्द्रमा में है तथा जो तेज अग्नि में है उसे मेरा तेज मानो। मैं ही पृथिवी में प्रविष्ट होकर अपने ओज से सभी प्राणियों को धारण करता हूँ तथा रसात्मक चन्द्र होकर सभी औषधियों को प्राप्त करता हूँ। अत: सिद्ध होता है कि अष्टविध प्रकृति परम पुरुषमय होने से ब्रह्म रूपा है इसकी साधना एवं समन्वय से जगत् कल्याण होता है।

गीताकार स्पष्ट शब्दों में प्रकृति एवं पुरुष को परा एवं अपरा प्रकृति (*गीता* 7.4-5) कहते है। कभी उसे क्षर एवं अक्षर नाम से (*गीता 15.16*) कहते हैं, कभी क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ के नाम से सम्बोधित (*गीता* 13.1) करते हैं तथा कहीं पर देह एवं शरीरी के नाम से (*गीता* 2.18, 22, 30) प्रतिपादित करते हैं। चूँकि आत्मा के निर्गुण या गुणातीत होने के कारण साधना या उपासना संभव नहीं है। त्रिगुणात्मिका प्रकृति के अष्टरूपों में मन, बुद्धि को क्रमश: चन्द्रमा एवं सूर्य के रूप में उपास्य माना गया है। पुरुष सूक्त में चन्द्रमा को विराट् पुरुष के मन से उत्पन्न माना गया तथा सूर्य को चक्षु (प्रकाश) से उत्पन्न माना गया है। अत: यह बुद्धि का प्रतीक है तथा अहंकार का कर्त्ता होने से यजमान के रूप में शैवों ने उपास्य माना तथा शिव की अष्ट मूर्ति इस प्रकार विकसित हुई जिनमें पञ्च महाभूत, सूर्य, चन्द्रमा एवं कर्त्ता रूप यजमान की गणना की जाती है। कालिदास ने शाकुन्तल के मङ्गलाचरण में इस प्रकार उल्लेख किया है—

या सृष्टि: स्रष्टुराद्या, वहति विधिहुतं या हविर् या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्त:, श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहु: सर्वबीजप्रकृतिरिति, यया प्राणिन: प्राणवन्त:,
प्रत्यक्षाभि: प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीश:।।

विधाता की प्रथम सृष्टि जल, यज्ञ में हुत हवि का वहन करने वाली अग्नि, हवन करने वाली यजमान मूर्ति, काल का विभाजन करने वाली सूर्य एवं चन्द्र की मूर्ति, शब्दगुण वाली आकाशरूपी मूर्ति जिसमें समस्त विश्व व्याप्त है, समस्त बीजों की प्रकृति रूपी पृथिवी तथा प्राणियों को श्वास (प्राण) दान करने वाली वायु शक्ति, शिव की आठ प्रत्यक्ष मूर्तियाँ इस जगत् की रक्षा करे। इसी प्रकार शिव की अष्टमूर्तियों की स्वीकृति पुष्पदत्ताचार्य शिवमहिम्नस्तो (26) में स्पष्ट रूप से घोषित करते हैं—

त्वमर्कत्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह:,
त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।
परिच्छन्नामेवं त्वयि परिणता विभ्रतु गिरम्,
न विद्मस्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि।।

शिव के इस पञ्चमहाभूतात्मक रूप को कर्मकाण्ड के उपासकों ने इस प्रकार पूजनकर्म में समाविष्ट किया है—

1. शर्वाय क्षितिमूर्तये नम: प्राच्याम्
2. भवाय जलमूर्तये नम: ऐशान्याम्

3. रुद्रायाग्निमूर्तये नमः उदीच्याम्
4. उग्राय वायुमूर्तये नमः वायव्याम्
5. भीमायाकाशमूर्तये नमः प्रतीच्याम्
6. पशुपतये यजमानमूर्तये नमः नैर्ऋत्याम्
7. महादेवाय सोममूर्तये नमः दक्षिणस्याम्
8. ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः आग्नेयाम्

— *नित्यकर्मप्रयोग माला*, पृ. 95

पञ्चमहाभूतों से इन मूर्तियों का उपासना क्रम प्रवर्तित हुआ है। पृथिवी का प्रतीक गन्ध है, आकाश का पुष्प, वायु का धूप, अग्नि का दीपक, जल का नैवेद्य (प्रसाद) तथा पञ्चमहाभूतों का प्रतीक ताम्बूल दार्शनिकों ने प्रतिपादित किया है। यथा—

लं पृथिव्यात्मकं गन्धं कल्पयामि नमः।
हं आकाशात्मकं पुष्पं कल्पयामि नमः।
यं वाय्वात्मकं धूपं कल्पयामि नमः।
रं वह्न्यात्मकं दीपं कल्पयामि नमः।
वं अमृतात्मकं नैवेद्यं कल्पयामि नमः।
सं सर्वात्मकं ताम्बूलं कल्पयामि नमः। — *श्रीविद्यारत्नाकर*, पृ. 13

पञ्च महाभूतों के देवता ही पञ्चायतन देवता कहलाते हैं। आकाश का अधिप विष्णु, अग्नि का ईश्वर देवी, वायु का स्वामी सूर्य, पृथिवी का शिव तथा जल का अधिष्ठाता गणेश कहे गये हैं—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्निश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः।। —***कपिलतन्त्र।***

इसी प्रकार सूर्य आरोग्य को देता है, देवी ऐश्वर्य दायिका है, ज्ञान के दाता शिव है, मोक्ष के प्रदाता विष्णु है तथा गणेश निर्बाध गति के देवता है।

आरोग्यं भास्करादिच्छेद् धनमिच्छेद् धुताशनात्।
ज्ञानं च शङ्करादिच्छेद् मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्।।

प्रकृति पुरुष के नित्य संयोग को कालिदास ने कुमारसम्भवम् में इस प्रकार सिद्धान्तित किया है—

त्वामामनन्ति प्रकृतिं पुरुषार्थप्रवर्तिनीम्।
तद्दर्शिनमुदासीनं त्वामेव पुरुषं विदुः।।
त्वं पितॄणामपि पिता देवानामपि देवता।
परतोऽपि परश्चापि विधाता वेधसामपि।।

त्वमेव हव्यं होता च भोज्यं भोक्ता च शाश्वतः।
वेद्यं च वेदिता चासि ध्याता ध्येये च यत् परम।।

— *कुमारसम्भवम्* 2.13-15

वस्तुतः त्रिगुणात्मिका प्रकृति एवं निर्गुणात्मक पुरुष है उसकी प्रार्थना में कालिदास कहते हैं—

जगद् योनिरयोनिस्त्वं जगदन्तो निरन्तकः।
जगदादिरनादित्वं जगदीशो निरीश्वरः।। —*कुमारसम्भवम्* 2.9

इस प्रकार प्रकृति एवं पुरुष के अनादि सम्बन्ध को स्वीकार किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि जीव प्रकृति के साथ अभिन्न होकर ही सृष्ट होने से भूत कहलाता है तथा पञ्च महाभूत सृष्टि में सूक्ष्मतन्मात्रा से विकसित होने से महाभूत कहलाते हैं। अतः शरीर केवल पञ्च महाभूतों का संघात मात्र है। अग्नि से उसका रूप है, जल रक्त है, वायु उसका स्पर्शन है तथा पृथिवी के द्वारा हाड़-मांसादि प्राप्त होते हैं, आकाश कान है। यह रोग एवं शोक से समाविष्ट है, पञ्च स्रोतों से समावृत, पञ्च भूतों से युक्त, नव द्वारात्मक है जीव एवं ईश्वर उसके दो देवता है, जो रजोगुणमय है, अदृश्य (नाशवान्), सुख, दुःख एवं मोहात्मक इन त्रिगुणों से युक्त वात, पित्त एवं कफ इन तीन धातुओं से युक्त है। उसे ही शरीर समझना चाहिए, यह *अनुगीता* स्पष्टतः उद्घोषित करती है—

अग्नि रूपं पयः स्रोतो वायुः स्पर्शनमेव च
मही पङ्कधरं घोरमाकाशं श्रवणं तथा।।
रोगशोकसमाविष्टं पञ्चस्रोतः समावृत्तम्।
पञ्चभूतसमायुक्तं नवद्वारं द्विदैवतम्।।
रजस्वलमथादृश्यं त्रिगुणं च त्रिधातुकम्।
संसर्गाभिरतं मूढं शरीरमिति धारणा।। —*अनुगीता,* 27.51-53

शरीर एवं शरीरी के सम्बन्ध को त्रिगुण एवं पञ्च महाभूतों के आधार पर अनुगीता में इस प्रकार स्पष्ट किया है—

कारणहेतु महाभूत	कर्महेतु गुण	करणहेतु इन्द्रिय	देवता	कर्तृहेतु
आकाश	शब्द (1 गुण)	श्रोत्र	दिशा	श्रोता
वायु	स्पर्श (2 गुण)	त्वचा	वैद्युत	ष्टा
अग्नि	रूप (3 गुण)	चक्षु	आदित्य	द्रष्टा

जल	रस (4 गुण)	जिह्वा	चन्द्रमा	भक्षयिता
पृथिवी	गन्ध (5 गुण)	नासिका	वायु	घ्राता
पञ्च महाभूत	वचन	वाक्	अग्नि	वक्ता
पञ्च महाभूत	आदान	पाणि	विष्णु	गन्ता
पञ्च महाभूत	विहरण	पाद	इन्द्र	विहरणकर्ता
पञ्च महाभूत	आनन्द	उपस्थ	प्रजापति	भोक्ता
पञ्च महाभूत	उत्सर्जन	गुह्य	मित्र	उत्स्रष्टा
पञ्च महाभूत	संशय	मन	चन्द्रमा	मन्ता
पञ्च महाभूत	निश्चय	बुद्धि	ब्रह्मा	बोद्धा
पञ्च महाभूत	अभिमान	अहंकार	रुद्र	अहंकर्ता

दशविधगन्ध—इष्ट (सुगन्ध), अनिष्ट (दुर्गन्ध), मधुर, अम्ल, कटु, निर्हारी (दूर तक फैलने वाली), मिश्रित, स्निग्ध, रूक्ष तथा विशद।

षड्विधरस—मीठा, खट्टा, कडुआ, तीता, कसैला एवं नमकीन।

द्वादशविधरूप—शुक्ल, कृष्ण, रक्त, नील, पीत, अरुण, छोटा, बड़ा, मोटा, दुबला, चौकोना एवं गोल।

द्वादशविधस्पर्श—रूखा, ठण्डा, गरम, स्निग्ध, विशद, कठिन, चिकना, श्लक्ष्मा (हल्का), पिच्छल, कठोर तथा कोमल।

दशविध शब्द—षडज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, निषाद, दैवत, इष्ट, अनिष्ट तथा संहत (श्लिष्ट)

—*अनुगीता*, 25.38-50

वस्तुत: पुरुष सूक्त के अनुक्रम में अनुगीता अग्नि की सप्त जिह्वाए , 5 ज्ञानेन्द्रिय, मन तथा बुद्धि मानती है इनमें गुणरूपी विषयात्मिका हवि का इन्द्रियों रूपी सप्त ऋत्विक् के द्वारा पुरुष के उदासीन कर्तृरूप में सप्त देवताओं के लिए यज्ञ क्रम प्रवर्तित रहता है। इस प्रकार पञ्च महाभूतों के उपासन को मोक्ष साधक सिद्ध किया

गया है तथा सर्वश्रेष्ठ ज्ञातव्य ज्ञान भी यही माना है। अत: पञ्चमहाभूतों की ब्रह्मरूपता सुसिद्ध हो जाती है, जो समग्र भारतीय उपासना का मूलाधार है।

पञ्चमहाभूत ही मानव जीवन का सबसे आवश्यक अधिष्ठान है। इसका संरक्षण ही प्रथम आवश्यकता है तथा इसका प्रदूषण ही मानव के लिए विनाश का मार्ग है। इनको साधन रूप नहीं मानकर साध्य रूप मानना ही वैदिक दर्शन का सार है। अग्नि तत्त्व में हवन रूपी यज्ञ करना सृष्टि तथा वायुशुद्धि के संरक्षण का परममार्ग है। जलरूपी सोम तत्त्व में स्पर्शन, दर्शन, आचमन, स्नान तथा अभिषेक आदि को करना मनुष्य मात्र के लिए आध्यात्मिक दिव्यता को ले जाना वाला शास्त्रीय मार्ग है। अत: सिंहस्थ पर्व में परम पवित्र जल का अवगाहन मनुष्य को परम आध्यात्मिकता के मार्ग पर ले जाने का सोपान अनादिकाल से प्रवर्तित है अत: सर्वथा वन्द्य है।

विभागाध्यक्ष एवं समन्वयक
उच्च अध्ययन केन्द्र (यू. जी. सी.)
दर्शनशास्त्र विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर-302004

तन्त्रागमीय सूर्य विमर्श : एक दृष्टि

डॉ. शीतलाप्रसाद पाण्डेय

भारतवर्ष की धार्मिक-सांस्कृतिक साधना पद्धति-परिगणित देवों में सर्वलोकवन्दित श्रीसूर्यदेव का असाधारण महत्त्व है। वे किसी सम्प्रदाय विशेष द्वारा पूजित देवपुरुष नहीं, आर्यावर्त की सभी प्राचीन और अर्वाचीन परम्पराओं ने उन्हें मान्य और उपास्य स्वीकार किया है। उनकी अर्चना का आलोक मात्र भारतवर्ष को ही नहीं, अपितु विश्व के सभी अञ्चलों को आज भी उद्भासित करता है। चीन में सूर्य का नाम याँग है। 'लीकी' ने अपने ग्रन्थ 'कि *आओ तेह सेंग*' में सूर्य को 'स्वर्ग-पुत्र' बताया है तथा दिन का प्रदाता कह कर उनकी प्रार्थना की है। पेरू शब्द का संस्कृत भाषा में अर्थ सूर्य का देश है। आज भी पेरू इसी नाम से जाना जाता है। इस्लाम में सूर्य को 'इल्म अहकाम अन नजूम' का केन्द्र कहा गया है। इस्लाम के अध्येताओं का उद्घोष है कि सूर्य आदि चेतन है, इच्छाशक्ति द्वारा उनके पिण्ड उनमें व्याप्त अन्तरात्मा से प्रेरित होते हैं। ईसाई मतावलम्बी ने सूर्य के धार्मिक महत्त्व को व्यापक रूप से स्वीकार किया है—ऐसा उल्लेख *'न्यू टेस्टामेण्ट'* में है। सेण्टपाल का आदेश है कि सूर्य के द्वारा पवित्र किया गया रविवार दान की अपेक्षा करता है। इसे प्रभु का दिन मानकर उपासना का प्रमुख दिन स्वीकार किया है। ग्रीक तथा रोम में भी रविवार के दिन ही पूजा के दिन की मान्यता दी गयी है। मैक्सिको-निवासी विश्व की सृजनशक्ति के केन्द्र में सूर्य को स्वीकार करते हैं। भुवन-भास्कर भगवान् सूर्य का अपना इष्टदेव तथा सर्वोपरि देवता मानकर उपासना करने वाले व्यक्ति 'सौर' कहलाते हैं।[1] सौर-मतावलम्बी सूर्य-मन्त्रादि के जप को ही अपने मोक्ष का साधन मानते हैं।[2] *महाभारत* में यह निर्दिष्ट है कि पाण्डव दल में 1008 सौर व्यक्ति थे जो सूर्य के उपासक थे।[3]

सूर्य निगम-आगम-संस्तुत तथा ज्ञान-विज्ञान-सम्मत देवाधिदेव परम देवता हैं। उन्हें लोकजीवन का साक्षी तथा सांसारिक प्राणियों की आँखों का प्रकाशक कहा गया है। इसीलिए उनको 'लोकसाक्षी' और 'जगच्चक्षु' कहते हैं। सभ्यता के आदिम ग्रन्थ *ऋग्वेद* के अनुसार भगवान् सूर्य सभी स्थावर-जङ्गमात्मक विश्व की अन्तरात्मा है।[4] सूर्य का उद्गम *वाल्मीकि रामायण* में तो भगवान् सूर्य को ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द, प्रजापति, महेन्द्र, कुबेर, यम, सोम, वरुणादि कहा गया है—

एष ब्रह्मा विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः।
महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपां पतिः।।[5]

संस्कृत-साहित्य में सूर्यदेव के अनेक पर्यावाची शब्द प्राप्त होते हैं। ये नाम देवता के विभिन्न गुणों को प्रदर्शित करते हैं। *अमरकोष* में सूर्य के सैंतीस नामोल्लेख निर्देशित हैं—अरुण, अर्क, अर्यमा, अहर्पति,

अहस्कर, आदित्य, उष्णरश्मि, ग्रहपति, चित्रभानु, तपन, तरणि, त्विषाम्पति, दिवाकर, द्युमणि, द्वादशात्मा, प्रभाकर, पूषा, भानु, भास्कर, भास्वान्, मार्तण्ड, मित्र, मिहिर, रवि, व्रघ्न, विकर्तन, विभाकर, विभावसु, विरोचन, विवस्वान्, सप्ताश्व, सूर, सूर्य, सविता, सहस्रांशु, हंस और हरिदश्व।[6] *शतपथ ब्राह्मण* में द्वादश आदित्यों का उल्लेख हैं, जिनके नाम क्रमशः—धता, मित्र, अर्यमा, उषा, शक्र, वरुण, त्वष्टा, विवस्वान्, सविता, अंशुमान् तथा विष्णु हैं।[7] ये ही द्वादश आदित्य संवत्सर के बारहों महीनों के पृथक्-पृथक् अधिपति हैं। **अदितेरपत्यः पुमान् आदित्यः** की व्याख्या के अनुसार माँ अदिति से उत्पन्न हुए सारे देवता आदित्य कहे जाते हैं। किन्तु कालान्तर में आदित्य संज्ञा केवल सूर्य में रूढ़ हो गयी। *अथर्ववेद* के द्वितीय काण्ड के 'शत्रुनाशन' सूक्त में सूर्य को पाँच शक्तियों—संतप्त शक्ति, हरण शक्ति, परिज्वलन शक्ति, शोकाभिभव शक्ति तथा पराभिभूत शक्ति के नाम से उनमें अन्तर्निहित शक्तियों का स्वरूप वर्णित है।[8]

यास्क ने सूर्य की निरुक्ति करते हुए कहा है कि—"सूर्यः सर्तेर्वा सुवतेर्वा स्वीर्य्यतेर्वा। तस्यैषा भवति"[9], इस यास्कोक्ति से यह स्पष्ट होता है कि 'सृ' अथवा 'षू' धातु से सूर्य की व्युत्पत्ति सम्भव होती है। भाष्यकार ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि—"सूर्यः इति वक्तव्यम्। स पुनरयं भगकालात्सृतः सूर्यो भवति। इसका तात्पर्य यह है कि उत्सर्पण से पूर्व भगकाल ऐसी उक्ति से परकाल जो उत्सर्पण क्रिया से युक्त है उसी को उत्सर्पणत्वात् सूर्य कहा गया है।[10] सूर्य का अर्थ है निरन्तर गतिशील होना। महर्षि शौनक का कहना है कि सूर्य प्राणियों के मध्य अच्छी तरह विचरण करते हैं अथवा उन्हें भलीभाँति प्रेरित करते रहते हैं। उनके सभी कार्यों को सम्यक् रूप से धारण करते हुए, ये सूर्य उन्हें भलीप्रकार से प्रेरित करने के लिए निरन्तर परिक्रमण करते रहते हैं। परिदृश्यमान सूर्य के विविध कार्य तथा रूप हैं।[11]

वेद सामान्य रूप से निगम के नाम से विख्यात है। निगम या वेद में सूर्य प्रमुख है। सूर्य को त्रयी-वेदत्रय का रूप ही कहा गया है।[12] आगम में वही बिन्दु, प्रकृति या शब्दब्रह्म के रूप में विख्यात है। शब्दब्रह्म के वाच्यतत्त्व सदाशिव या पञ्चमुख महेश्वर की तुलना वेद में निर्दिष्ट 'आदित्य' से हो सकती है। *छान्दोग्योपनिषद्* का उद्घोष है—'आदित्य' देवमधु है, द्युलोक तिरछा बाँस है, अन्तरिक्ष मधुमक्षिकाओं का छत्ता है और किरणें बच्चे हैं। आदित्य के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशाओं की किरणों से क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और इतिहास पुराणात्मक पुष्प रस प्रवाहित होता है। ऊर्ध्वगत रश्मियों से गुह्य आदेशात्मक मधुकर एवं ब्रह्म (प्रणव) तत्त्वात्मक पुष्प का रस प्रवाहित होता है। आदित्य के पूर्वादि मुखों को अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम एवं ब्रह्मा के नाम से अभिहित किया गया है। ये अग्नि सदाशिव के सद्योजात, तत्पुरुष, वामदेव, अघोर तथा ईशान मुख है।[13] आदित्य या सदाशिव के ईशानात्मक ऊर्ध्वमुख से निर्गत गुह्य आदेश ही आगम है। यही निगमागमोक्त आदित्योपासना की साम्यावस्था है। इसी कथन का अनुमोदन स्वच्छन्दतन्त्र में भी होता है—

मन्त्राख्यं तु महाज्ञानमीशानात्तु विनिर्गतम्।
सद्योजातस्तु ऋग्वेदो वामदेवो यजुःस्मृतः।
अघोरः सामवेदस्तु पुरुषोऽथर्व उच्यते।।
ईशानश्च सुरश्रेष्ठः सर्वविद्यात्मकः स्मृतः।।[14]

सौर-साधना के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ *साम्बपञ्चाशिका* में उपर्युक्त विवेचन का समर्थन अधोलिखित रूप से किया गया है—

यत्रारूढं त्रिगुणवपुषि ब्रह्म तद्बिन्दुरूपं,
योगीन्द्राणां यदपि परमं भाति निर्वाणमार्गः।
त्रय्याधारः प्रणव इति यन्मण्डलं चण्डरश्मे -
रन्तः सूक्ष्मं बहिरपि बृहन्मुक्तये तत्प्रपद्ये।।[15]

अर्थात् त्रिगुणवपु, सर्वज्ञ, अव्याकृत, जगत्कारणरूप जिस सूर्यमण्डल में बिन्दुरूप शब्दब्रह्म सन्निविष्ट है और जो श्रेष्ठ योगियों के हृदय में ब्रह्माकार में परिणत बुद्धि-वृत्ति के लिए तथा मध्यम योगियों को अर्चिरादि पथ से ब्रह्मलोक पर्यन्त निर्वाण मार्ग के रूप में शोभित होता है, वेदत्रयी का आधारभूत प्रणव ही जिसका सूक्ष्म मण्डल है, सम्पूर्ण जीवों के अन्तःकरण में इन्द्रियों के पकड़ से बाहर अतिसूक्ष्म रूप में वर्तमान और बाह्याकाश में स्थूल तथा व्यापक रूप में अवस्थित उस सूर्यमण्डल के अविद्या नाश के लिए मैं शरणापन्न होता हूँ।

देवगण, पितृगण एवं मनुष्यों द्वारा प्रतिदिन उपभुक्त होकर क्षीण चन्द्रमा जिसमें प्रविष्ट हो करके पूर्णता लाभ करता है तथा जिस मधुमय आदित्य में वेद, मधुमक्षिकाओं की तरह शोभित होते हैं, मैं उसी सूर्यमण्डल में विद्यमान अमितानन्दरूप अमृत के शरणागत होता हूँ।[16] इस प्रकार लोक में सूर्य की सतत साधना अहर्निश प्रवहमान तत्त्व है।

यजुर्वेद में तन्त्रायी शब्द का प्रयोग आदित्य के अर्थ में प्रयुक्त है।[17] कालचक्र ही तन्त्र है। उस तन्त्र में वर्तमान आदित्य को ही तन्त्रायी कहा जाता है—**तन्त्रे कालचक्रे एति निरन्तरं गच्छति तन्त्रायी तस्मै आदित्याय नमोस्तु। एष वै तन्त्रायी य एष तपत्येष हीमाँल्लोकाँस्त मिवानुसञ्चरति।।** 14/2/2/22 इति श्रुतेः।

तत्त्वदर्शन

ब्रह्म के दो रूप श्रुति में निर्दिष्ट है—मूर्त्त तथा अमूर्त्त। आदित्य-रूप में ब्रह्म मूर्त्त है और अदिति रूप में अमूर्त्त है अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म तथा पर, इन तीनों रूपों में जो कुछ भी 'अस्ति' तथा 'भाति' है, वह समस्त आदित्य ही है। स्थूल के मध्य में सूक्ष्म तथा सूक्ष्म के मध्य में पर—इस प्रकार यह जो सम्पूर्ण जगत् है, इसमें

आदित्य प्रविष्ट है। अर्क-रूप में स्वतेज तथा महिमा द्वारा इन सबको व्याप्त किए हुए हैं। पुनश्च भुवन में जो चक्र चलता है, उसकी नाभिनिष्ठ सत्ता शक्ति (Nuclear Power) के रूप में उसे 'संग्रह' करके रखे हुए है, स्वयं और (Moments) उस चक्र का जो वलय, नेमि या परिधि है, उसे धारण किये हुए है तथा इस भुवनचक्र की गति (Function) में जो अध्व (Course या Cure) है एवं जो छन्द (Law अथवा equation) है, उसका भरण कर रहे हैं। आदित्य रूप मूर्त्त ब्रह्म के 'अन्तर्बहि: सर्वत:' इस पञ्चवृत्ति का ध्यान करें। आदित्य, विवस्वान्, अर्क, सविता, नारायण, गभस्तिमान्, हरिदश्व—ये रहस्यात्मक अर्थ को द्योतित करते हैं। सब कुछ प्रसव करने के कारण सविता, सूर्य हैं। पोषण करने के परिणामस्वरूप पूषा है। हंसवती ऋक् में विख्यात 'ऋतं बृहत्' अर्थात् ऋत ब्रह्म (हंस) के रूप में सबका पालन-रक्षण करते हैं। ये (Cosmic life principe) कालाग्नि रुद्र-रूप सब कुछ का ये भक्षण करते हैं। इन्होंने प्रणव (ॐकार) रूप में प्रणसमूह को भी प्राणित करते हैं। 'ॐ ह्रीं घृणि:'—यही आदित्य का हृदय है। इस प्रकार एकर्षि प्रत्यक्ष भगवान् आदित्य नारायण का हम अर्घसवन करते हैं। हमारा अर्घ भी सूर्य ज्योति में सवन (हवन) के फलस्वरूप रेफयुक्त (अग्नि) होकर 'अर्घ' बने।[18]

भविष्यपुराण में भगवान् वासुदेव श्रीसाम्ब से कहते हैं कि प्रत्यक्ष देवता भगवान् सूर्य (भास्कर) हैं। समस्त संसार के चक्षु (नेत्र) तथा दिन का प्राकट्य इन्हीं से होता है। इनसे अधिक प्रामाणिक-सतत-शाश्वत कोई अन्य देवता नहीं है।[19] जिनसे इस संसार का सृजन होता है जिसमें जाकर इसका लय होगा और जिनसे सत्ययुगादि चारों युग उद्भुत होते हैं, वे साक्षात् भगवान् सूर्य हैं।[20] इन्हीं की इच्छा से यह सचराचर जगत् उत्पन्न हुआ है, स्थिर रहता है तथा अपने-अपने कर्मों में प्रवृत्त होता है।[21] इनकी प्रसन्नता से यह लोक चेतना को प्राप्त होता है, उदय होने पर सभी उदीयमान और अस्त होने पर सभी अस्त हो जाते हैं, क्योंकि जब ये अदृश्य हो जाते हैं तो यहाँ कुछ भी दिखाई नहीं देता। वस्तुत: ये प्रत्यक्ष सिद्ध हैं।[22] पुराणेतिहास में इन्हें 'अन्तरात्मा' शब्द से अभिहित किया गया है।[23] इससे यह सिद्ध होता है कि इनसे परे न कोई देवता है, न हुआ है, न कभी भविष्य में होगा। परिणामत: वेदों ने इन्हें 'परमेश्वर' की पदवी प्रदान की है।[24]

विवस्वान् देव अव्यक्त कारण, नित्य, सत् तथा असत् स्वरूप हैं। तत्त्व-चिन्तकों द्वारा उन्हें प्रधान तथा प्रकृति कहा गया है। आदित्य के आदिदेव तथा अजात होने के कारण 'अज' कहा जाता है। देवताओं में सबसे महान् होने के कारण 'महादेव' के नाम से जाने जाते हैं।[25] समस्त लोकों के ईश होने से सर्वेश तथा अधीश होने के कारण उन्हें 'ईश्वर' और अत्यन्त विशाल होने के कारण 'ब्रह्मा' तथा भवत्व होने के कारण 'भव' कहा गया है।[26] वे समस्त प्रजाओं की रक्षा और पालन करते हैं, इसी कारण वे प्रजापति तथा 'पुर' में शयन करने से उन्हें ही पुरुष कहा जाता है।[27]

किसी से उत्पाद्य न होने और अपूर्व होने के कारण स्वयंभू नाम से विख्यात है।[28] हिरण्याण्ड में रहने तथा दिवस्पति ग्रहों के स्वामी हैं। इसलिए इन्हें हिरण्यगर्भ और देवों के भी देव दिवाकर कहा गया है।[29]

तत्त्वदर्शी महर्षियों ने भगवान् सूर्य को विविध नामों से सम्बोधित किया है। वे सहस्रशीर्ष, सहस्रनेत्र तथा सहस्रपैरों वाले हैं। ये आदित्यदेव ही इस भुवन के रक्षक तथा पुराण-पुरुष कहे गए हैं।[30] इनका क्षेत्र सम्पूर्ण विश्व है—

सर्वत: पाणिपादौऽसौ सर्वतोऽक्षिशिरोमुख:।
सर्वत: श्रुतियुक्तोऽसौ सर्वमावृत्य तिष्ठति।।[31]

तथा *महाभारत* में यह प्राय: पचास बार आया है।[32]

साम्ब-पञ्चाशिका के प्रणेता 'श्रीकृष्णतनय साम्ब पूर्वजन्म में भगवती पार्वती के पुत्र स्वामिकार्त्तिकेय हैं। विविध व्रतों के द्वारा जाम्बवती ने इन्हें पुत्ररूप में प्राप्त किया था।'[33] *वैखानस-आगम* में साम्ब की चर्चा पञ्चवीरों के रूप में प्राप्त होती है।[34] पञ्चाशत् श्लोक में भगवान् साम्ब ने सूत्र रूप से सौरागमोपासना के समस्त पक्षों का रहस्योद्घाटन किया है। महान् तान्त्रिक आचार्य क्षेमराज ने अपनी टीका में अन्य तान्त्रिक सम्प्रदायों के विविध-विधानों की तौलनिक दृष्टि प्रदान की है।[35]

आचार्य अभिनवगुप्त रचित *तन्त्रालोक* में तन्त्रशास्त्र-सम्बन्धी समस्त विषयों के बारे में अपने समय का निष्कर्ष निरूपित है। आचार्य क्षेमराज की *तन्त्रालोक* के सम्बन्ध में मान्यता है कि यह 'अशेषागमोपनिषदालोक' है।[36] *तन्त्रालोक* में सूर्य को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि '**प्रकाशमात्रं सुव्यक्तं सूर्य इत्युच्यते स्फुटम्।**'[37] अर्थात् सूर्य सुव्यक्त प्रकाश है, वह आप्य आदि उपाधियों से उपहत नहीं होता। वह शुद्ध प्रकाशवाला है। सूर्य को प्रमाण माना जाता है।[38] इसी ग्रन्थ में मूर्त्यष्टक के सन्दर्भ में मूर्त्तियों से सम्बन्धित सूर्य की महिमा बताते हुए कहा गया है कि 'अस्तित्व में परिदृश्यमान गृहीत सत्तार्क, ज्योति के मूर्त्तिमन्त प्रतीक तथा दिव्यता से अन्त:स्फुरित देवत्व के साक्षात् विग्रह भगवान् भास्कर हैं। इनसे विश्व का तर्पण होता है। अत: ये विश्वतर्पक माने जाते हैं। ऐसे भगवान् भास्वान् का मालिनी द्वारा तर्पण करना चाहिए। भगवान् सूर्य देववृन्द को, पितरों, मुनियों, यक्षों, राक्षसों से लेकर समस्त भौतसर्ग का सन्तर्पण करते हैं। ये सर्जन के प्राण हैं। विश्व के वीर्यरूप हैं। संसार को अपनी आभा से प्रकाशित करते हैं। इनका तर्पण जीवन को तृप्ति से भर देता है।[39]

आचार्य अभिनवगुप्त के शिष्य आचार्य क्षेमराज ने *स्वच्छन्दतन्त्र* में द्वादश आदित्यों का उललेख किया है—

(1) अर्यमा, (2) इन्द्र, (3) वरुण, (4) पूषा, (5) विष्णु, (6) गभस्तिमान्, (7) मित्र((8) अजघन्य तथा (9) जघन्यक। इनके अतिरिक्त (10) विवस्वान्, (11) पर्जन्य और (12) धाता। ये कश्यप अपत्य काश्यपेय भी हैं। सभी रुद्र , वसु और आदित्य काश्यप के ही हृदयांश हैं। इनमें तेज का कोष तो आदित्य ही हैं।[40] इनके रथ रूप निम्नवत् हैं—

अमृतोद्भवो रथो दिव्यः सर्वदेवसमन्वितः।
यज्ञश्चक्रं रथे तस्मिन् सर्वज्ञानमयी च धूः।।
सदाश्वाश्च स्वराः सप्त वेदहूङ्कारनिः स्वनाः।
नागा योक्त्राणि तेषां वै अरुणश्चैव सारथिः।।
सत्यं च मञ्चकं तस्य वायुर्वेगौ रथस्य तु।
नवयोजनसाहस्रो विग्रहो भास्करस्य तु।।
विगुणं मण्डलं तस्य त्रैलोक्ये भाति भास्वरम्।
ज्ञानशक्तिः पर ह्येषा तपत्यादित्यविग्रहा।।[41]

अर्थात् उस आदित्य का रथ क्षीरसमुद्र से निकला है। इसी पर आदित्य चलते हैं। जगत्प्रकाश के लिए आदित्य ही विमुक्त हैं। तेजोनिधि कहने का यह तात्पर्य भी है कि, चित् शक्ति के प्रतीक हैं। पराशक्ति रूप संवित् से समुत्थित हैं। सर्वदेवमय होने का तात्पर्य प्राणरूप होना भी है।

उक्त रथ के विषय में कल्पना कर रहे हैं कि, जिस पर सूर्य चलते हैं, उस रथ का चक्र *गीता* के अनुसार सर्वयज्ञमय ब्रह्म है और वह यज्ञ में ही प्रतिष्ठित है। इस तरह सूर्य के रथ का चक्र स्वयं यज्ञ है। इसलिए इस रथ में एक ही चक्र होता है। उस रथ की धुरा भी सर्वज्ञानमयी वागीश्वरी शक्ति ही है।

वाग्देवी के सात स्वर ही रथ के अश्व हैं। ये अश्व ह्रेषा करते हैं, हिन-हिनाते हैं। यह इनका देव का हूंकार रूप निःस्वन है। वही सात सरगम के स्वर हैं।

इस कथन से वेदों के नादात्मक आमर्श से सूर्य का अभ्युत्थान, ज्ञानकाण्ड और देवता काण्ड रूप परा, परापरा और अपरा शक्तियों का सिद्धिमयत्व तथा मुद्राओं के रूप प्रतिमन्त्र जो ऊर्ध्व अधर हस्त प्रदर्शन हैं, उसका स्वरूप सब सूर्य शक्ति के प्रभाव के रूप में ही प्रदर्शित प्रतीत हो रहा है।

इसके योक्त्र अर्थात् बन्धन के मोटे रस्से नाग हैं। अनन्त आदि नाग भी प्रसिद्ध हैं। न+अग का अर्थ सतत गतिशील संकल्प भी होता है। अतः संकल्प ही नियोक्ता है—यह अर्थ भी होता है। साथ ही उन स्वर रूप अश्वों का सामर्थ्य भी अरुण अहंभाव है। इस दृष्टि से सूर्य और सूर्य रथ की मर्मज्ञता पर सबका ध्यान जाना चाहिए।

उस रथ का मञ्च जिस पर सूर्य आसीन होते हैं—वह सत्य है। सत्य दो प्रकार का होता है—1. सत्य और 2. ऋत। ये दोनों सूर्य के आसन के गद्दे हैं। रथ का वेग वायु देव हैं। वायु प्राणापानवाहमय होता है। इसमें भी वेद है। वह वायु का ही वेग है। ऐसे रथ पर सवार भास्कर का नौ हजार योजन का शरीर है।

उसका मण्डल इनके शरीर से तिगुना है अर्थात् 26 हजार योजन का है। सत्त्व, रज, तम तीन गुणों से अन्वित मण्डल का अर्थ भी लिखा जा सकता है।

सूर्य के सम्बन्ध में भगवान् भैरव कह रहे हैं कि, यह पराज्ञान का शक्तिमन्त स्वरूप है। आदित्य के शरीर में यह तप रहने वाला प्रत्यक्ष ब्रह्म है। इसका तप भी ब्रह्मयज्ञ ही है। सर्वशक्तिमान् महेश्वर की विश्व प्रकाशिका ज्ञान शक्ति ही बाह्य आदित्य और जीवादित्य के रूप में प्रतिष्ठित है। यही आदित्य और जीवादित्य के रूप में प्रतिष्ठित है। यही आदित्य विग्रह का मर्म है।

पूर्णता-प्रत्यभिज्ञा के प्रणेता आचार्य रामेश्वर झा का अभिमत है—

पृथग्भावं विमर्शात्मप्रमाणादिं प्रकाशयन्।
द्वादशात्मस्वरूपेण भात्यकारकलादिना।।
षण्ढवर्येण सूर्यात्मा प्रमाणात्मार्थमासृजन्।
स्थापयन् संहरंश्चापि कुर्वन् सर्वाणि चात्मसात्।।
एकादशेन्द्रियगणो बुद्धियुग् द्वादशात्मकः।
प्रकाशकत्वात् सूर्यात्मा विषये स्वे विराजते।।[42]

अर्थात् अहमात्मक विमर्श जब संकुचित प्राण, बुद्ध्यादि रूप से भासित होता है तब उद्योगादि कला से युक्त होता है तथा उसमें अन्य पदार्थ की प्रधानता रहती है। क्योंकि प्रस्तुत विमर्श में प्रभु (प्रकाश स्वरूप स्वात्मा) अपने को छिपाकर अन्य पदार्थ-विमर्शात्मक प्रमाणादि को प्रकाशित करता हुआ षण्ढ=नपुंसक (ऋ, ॠ, ऌ, ॡ) के बिना अकार आदि 12 स्वर से सूर्यरूपेण भासित होता है। प्रमाणरूप प्रभु, पदार्थों की सृष्टि, स्थिति तथा संहार करता हुआ समस्त पदार्थों को आत्मसात् कर लेता है।

एकादश इन्द्रिय (पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय तथा उभयात्मक मन) और बुद्धि से युक्त द्वादश स्वरूप प्रभु अपने-अपने विषयों को ग्रहण करते हैं। विषयों के प्रकाशक होने से ये सूर्य रूप कहे जाते हैं। वस्तुतः शिव ही सूर्य हैं।

योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं—

'आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्'[43]

अर्थात् आकाश से उत्पन्न होने वाले समस्त ज्योतिर्मय पिण्डों में मैं रश्मिमाली सूर्य ही विष्णु हूँ। यह सहस्रकिरण, सहस्रपाद, सहस्रमुख, सहस्रनेत्र कहलाता है। यह नित्य आकाश से उत्पन्न होता है और नित्य आकाश में तिरोहित होता है। उदितावस्था में यह बड़ा दिखायी देता है। इसलिए ब्रह्म (बड़ा) है—ऐसा कथन है। अस्त होते समय शान्त होता हुआ अपनी किरणों को समेटता हुआ छिपता है। शान्त होने से यह शिव है। आदित्यमण्डल ही प्रकाश का समुद्र-क्षीरसागर है। प्रकाश क्षरने से क्षीर कहलाता है। आदित्यमण्डल ही गोलोक-प्रकाश का द्वीप है। गो नाम प्रकाश अथवा ज्ञान का है। इस आदित्यमण्डल में कृष्णकाय (रहस्यमय शरीर वाला) पुरुष शयन (विश्राम) करता है। यह पुरुष ही अग्नि है। सब में व्याप्त होने से यही विष्णु है। इस

सहस्रनाम्ना पुरुष की हम सभी विविध भाँति से उपासना करते हैं। तात्पर्य यह है कि विष्णु का अपरोक्ष विग्रह यह सूर्य है। महर्षि अत्रि का उद्घोष है—'विष्णुशक्तियुतं सूर्यस्स तेजो वैष्णवं दधत्।'[44]

मन्त्र-विमर्श

कभी कश्मीर मण्डल में तान्त्रिक सूर्योपासना सविधि प्रचलित थी। महाराजा ललितादित्य ने 'मार्तण्ड-मन्दिर' का निर्माण करवाया था जिसके भग्नावशेष आज भी विद्यमान है जो इस तथ्य का प्रमाण है कि यह अपने समय पर भव्य तथा अतिविशाल रहा होगा[45] यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि प्राय: सभी तन्त्र-साहित्य में सर्वत्र 'मार्तण्ड भैरव' का स्वरूप उपलब्ध है। *ईशानशिवगुरुदेवपद्धति* में वर्णित स्वरूप-विधान यहाँ प्रस्तुत है—

सत्वक्सङ्ग्रामविजयो मन्त्रो मार्तण्डभैरव:।
दीर्घस्वरै: स्वैरङ्गानि ह्रस्वै: स्वै: पञ्चमूर्त्तय:।।

सूर्यश्च भास्करो भानू रविश्चाथ दिवाकर:।
पञ्चैता मूर्तयस्तस्य मार्तण्डस्य भवन्ति हि।।

अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं पञ्चमूर्तीस्तु विन्यसेत्।
मध्यादिकं कनिष्ठान्तमङ्गमन्त्राणि च न्यसेत्।।

स्वावकाशेष्वथाङ्गानि विन्यस्य रविवत् स्वयम्।
प्रागवत् पीठे विभूत्यादिमण्डलाब्जे स्मरन् यजेत्।।

शक्तीर्दीप्तादिकाश्चापि पूनर्दूतीचतुष्टयम्।
उषां प्रभां च सन्ध्यां च प्रज्ञा दिक्पत्रगा यजेत्।।

स्वाख्याद्यर्णै: स्वदीर्घेन्दुखण्डैरिष्ट्वा ततो रविम्।
आवाहयेत् तत: पद्मे दिक्पत्रगा यजेत्।।[46]

सूर्य, भास्कर, भानु, रवि और दिवाकर—ये पञ्चमूर्त्तियाँ मार्तण्ड की होती हैं। पाँच ह्रस्वों को मार्तण्ड भैरवबीज में में लगाकर पञ्चमूर्तिन्यास अङ्गुष्ठादि—कनिष्ठ पर्यन्त क्रमश: करें। पुन: शिर, वदन, हृदय, गुह्य तथा पाद देश में इसी प्रकार न्यास करें। इस प्रकार मार्तण्ड भैरव का न्यास करना चाहिए। मण्डल में उषा, प्रभा तथा सन्ध्यादि शक्तियों का स्मरण भजन करके पद्मस्थित सूर्यनारायण का स्मरण ध्यान करना चाहिए। मार्तण्ड ध्यान निम्नवत् हैं—

सिन्दूरारुणमष्टबाहुमरुणैराकल्पकैर्भासुरं
वामाङ्कार्धनिवेशितस्वदयितं त्र्यक्षैश्चतुर्भिर्मुखै:।।

सत्पाशाङ्कुशमक्षसूत्रममलं युक्तं कपालं क्रमात्।
खट्वाङ्गं जलजं दधानमथ तच्चक्रं च शक्तिं स्मरेत्।।[47]

शारदातिलक-तन्त्र में मार्तण्ड-ध्यान बताते हुए कहा गया है कि जिनके शरीर की कान्ति स्वर्णपद्म के पत्ते के सदृश लाल है, जिनके हस्त में मनोहर खट्वाङ्ग, कमल, चक्र, शक्ति, पाश, अङ्कुश, अक्षमाला तथा कपाल विभूषित है, जो चतुर्मुख हैं, प्रत्येक मुख पर तीन-तीन नेत्र विराज रहे हैं, जिनके अर्द्धाङ्ग में उनकी प्रिय वल्लभा विराजती हैं, मणिमय मुकुट से सुशोभित, उज्ज्वल हार से देदीप्यमान—ऐसे भगवान् मार्तण्ड का मैं भजन करता हूँ।[48]

इस प्रकार ध्यान, आवाहन तथा पूजन विधिवत् शक्ति सहित रवि का करना चाहिए।[49] न्यासमन्त्र अधोलिखित है—

ब्रह्मतेजोज्वालामणि हुं फट् ठठ।
विष्णुतेजोज्वालामणि हुं फट् ठठ।
रुद्रतेजोज्वालामणि हुं फट् ठठ।
महेश्वरतेजोज्वालामणि हुं फट् ठठ।
सत्यतेजोज्वालामणि हुं फट् ठठ।[50]

बुभुक्षु तथा मुमुक्षु उभयविध अभिलाषी व्यक्ति के लिए क्रमशः सृष्टि एवं संहारक्रम से न्यास करने का उल्लेख है।[51]

इस प्रकार प्रातः द्विज स्नान कर सन्ध्याविधि सम्पन्न कर नाभि में सूर्य का ध्यान कर 108 बार म जप करने से धनधान्य तथा श्री की प्राप्ति होती है। पुरश्चरण पूजा, होम, अर्घ्य जपादि एक लाख मन्त्र सम्पादित करने से साधक को सभी इच्छित वस्तुओं को प्राप्ति हो जाती है—

सावित्रीं यो यथोद्दिष्टां जपन् सम्पूजयेद् रविम्।
नित्योक्तमार्गहोमाद्यैः सर्वान् कामानवाप्नुयात्।।
इत्थं यथावदुदितैरिह सूर्यमन्त्रैर्नासाध्यमस्ति खलु वस्तु जगत्त्रयेऽपि।
यस्मादतः सवितरि प्रणिधाय भक्तिं सिद्धिं प्रसिद्धिविभवा च लभेत् मुक्तिम्।।[52]

उपर्युक्तविवेचना से ऐसा प्रतीत होता है कि मार्तण्डभैरव कभी पृथक् शैव-सूर्योपासना का सम्प्रदाय ही था—

शिवोत्तमस्तु सघ्राण उमाकान्तो दृशान्तभाक्।
समाश्रवणं शुक्लं साक्षिरक्तश्च मारुतः।।
अनन्तः सूक्ष्मयुक्तोऽत्रिः सत्वक्सर्गस्तथा षढी।।[53]

श्रीरामतोषणभट्टाचार्य प्रणीत '*प्राणतोषिणी*' में यह निर्दिष्ट है कि वैदिकसन्ध्या के अनन्तर तान्त्रिकी सन्ध्या करनी चाहिए—

आदौ च वैदिकीं सन्ध्यां कृत्वा चागमसम्मताम्।

इस क्रम में मार्त्तण्डभैरव जलाञ्जलि प्रदान करने की उनकी उपासना का उल्लेख है—

जलाञ्जलित्रयं भूमौ मार्त्तण्डभैरवाय च।
ऊर्ध्वबाहुस्ततो मन्त्री मार्त्तण्डं समुपाश्रयेत्।
ॐ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्।
मार्त्तण्डशेषे देवेशि !भैरवं पदमीरयेत्।[54]

शाक्तानन्दतरङ्गिणी में यह उल्लिखित है कि साधक अङ्गकार्य के साथ मुख्य कार्य के सिद्धि के लिए 'ॐ ह्रीं हंसः' इस प्रकार सूर्यमन्त्र उच्चारण करके मार्त्तण्डभैरवाय एवं प्रकाशशक्तिसंयुतग्रहराशियुताय स्वाहा' उच्चारण करके तीन बार सूर्यार्घदान करे। तत्पश्चात् सूर्यमण्डल मध्यवर्त्तिनी देवी को उद्देश्य करके जलाञ्जलि देकर सूर्यमण्डल मध्यवर्त्तिनी देवी का सूर्यस्वरूपा ध्यान करे। तदनन्तर गायत्री का उच्चारण करके इसके द्वारा अर्घ्य विसर्जन करें। गायत्री देवी को सूर्यासन कृताश्रिया देवी का चिन्तन करना विहित है। सूर्यकुण्डलिनी को नित्यानन्द स्वरूप चिन्तन करें।[55]

तान्त्रिक उपासना में मुद्रा का विशेष महत्त्व है। आचार्य भास्करराय ने सौर मुद्रा को कमलाकृतिमुद्रा कहा है—

कमलाकृतिमुद्रा तु सौरमुद्रेति कीर्तिता।[56]

दक्षाङ्गुष्ठं वामाङ्गुष्ठे क्षित्वा हस्तद्वयेन तु।
एकमुष्टिं सावकाशां कुर्यात् सा कुम्भमुद्रिका।।
अधोमुखे वामहस्ते ऊर्ध्वास्यं दक्षहस्तकम्।
क्षिप्त्वाङ्गुलीरङ्गुलीभिर्ग्रथयिता विवर्तयेत्।।
प्रोक्ता संहारमुद्रेयं विनियुक्ता विसर्जने।।[57]

अर्चन के अन्त में सूर्य गायत्री जपने का विधान है। गायत्री मन्त्र निम्नवत् है–

आदित्याय विद्महे मार्तण्डाय धीमहि।
तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् —*खिलाधिकार, 71/43*

देवप्रासाद एवं प्रतिमाविज्ञान

देवीपुराण में आदित्ययाग का वर्णन प्राप्त है।[58] तन्त्रागमीय प्रणाली में याग का स्वरूप—**यागो बिम्बादिषु भगवदर्चनम्, होमो वह्निसन्तर्पणम्'**[59] उल्लिखित है। अत: याग का तात्पर्य मूर्त्यार्चन है। *सनत्कुमारसंहिता* में सूर्ययाग का सम्यक् स्वरूप वर्णित है, तदनुसार सूर्यायतन—

ग्रामस्योत्तरपार्श्वे तु सूर्यस्यायतनं भवेत्।[60]

गाँव के उत्तरपार्श्व में सूर्य का मन्दिर होना चाहिए। समराङ्गणसूत्रधार में आठ प्रकार के सूर्य-प्रासाद का निर्देश है। गवय, चित्रकूट, किरण, सर्वसुन्दर, श्रीवत्स, पदनाभ, वैराज तथा वृत्त—ये इनके नाम हैं।[61]

भविष्यपुराण ने सूर्यालयों की चर्चा करते हुए समुद्र, पद्म, गरुड, नन्दिवर्धन, कुञ्जर, घट, वृष, गृहराज, सर्वतोभद्र, अष्टास्र, वृक्ष, सिंह, हंस षोडशास्र आदि नाम गिनाये हैं—

समुद्रपद्मगरुडनन्दिवर्धनकुञ्जरा:।
गृहराजो वृषो हंस: सर्वतोभद्रको घट:।
सिंहो वृक्षश्चतुष्कोणषोडशास्त्राश्रियस्तथा।।[62]

साम्बपुराण के 29वें अध्याय में सूर्यविमानों का वर्णन प्राय: *भविष्यपुराण* जैसा ही है। इसके अतिरिक्त *काश्यपशिल्प* तथा *विश्वकर्मप्रकाश* में भी इनका उल्लेख है।

सनत्कुमार के ही शब्दों में याग का स्वरूप अधोलिखित है—

चतुर्द्वारं विधातव्यं प्राग्द्वारं वा यथाविधि।
मण्डपं वाथ कूटं वा प्रासादं चैकभूमिकम्।।

वृत्तं वा चतुरश्रं वा कारयेत् तत्र चायतम्।
प्रतिमामारभेत् तत्र नवतालप्रमाणत:।।

अरुणं पीतवस्त्रं च दीप्तकुण्डलधारिणम्।
रक्तहस्ताङ्घ्रिनेत्रं च कवचेनोपशोभितम्।।

नानारत्नाङ्कमुकुटं रत्नमण्डलशोभितम्।
रथासने समासीनं कुर्यात् सिंहासनेऽपि वा।।

कुर्याच्चामरधारिण्यो उषासंध्ये च पृष्ठत:।
रक्ते शुक्लाम्बरे चैव चूडामुकुटशोभिते।।

यम: सुवर्चला चापि अर्चनापीठपार्श्वयो:।
कृष्णो यमस्तु वर्णेन गौरी चैव सुवर्चला।।

प्रतिष्ठा सूर्यमन्त्रेऽस्तु शान्तिहोमविधानतः।
प्रागादिचोत्तरान्तं तु चतुर्भिः क्रमयोगतः।।

दिशाहोमस्तु सावित्र्या समिधस्त्वर्कजाः स्मृताः।
बीजेन मूर्ध्नि विन्यासः सूर्यस्यात्मन एव च।।

ब्रह्मरात्रे तथा मन्त्र द्रष्टव्या मन्त्रकोशके।[63]
पूजामस्य प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः।।

अष्टपत्रं ततः पद्मं सूर्यबीजेन योजयेत्।
कर्मर्चां कर्णिकामध्ये सूर्यबीजेन विन्यसेत्।।

खखोल्कायेति मन्त्रेण देवमावाहयेत् ततः।
ततस्तेनैव मन्त्रेण तद्वदासनमादितः।।

स्थानानि कल्पयेत् पश्चाद ग्रहाणामनुपूर्वशः।
बृहस्पतेश्च पूर्वस्यां शुक्रस्यैव तु दक्षिणे।।

शनैश्चरस्य वारुण्यामुत्तरस्यां निशाकृतः।
अङ्गारकस्य चाग्नेय्यां बुधस्यैव च नैर्ऋते।।

राहोश्चैव च वायव्ये केतोरीशानगोचरे।
आसनं देयमाद्येन सूर्यमन्त्रेण चादितः।।[64]

पाद्यं दत्त्वा द्वितीयेन तृतीयेनार्घ्यमेव च।
चतुर्थेन ततो दद्यात् क्रमेणाचमनीयकम्।।

तथाभिषेकमन्त्रेण देवं तमभिषेचयेत्।
वस्त्रं सूत्रमलङ्कारं दद्यात् सावित्रिया ततः।।

गन्धं तु आदिमन्त्रेण ततो दद्याद् विचक्षणः।
द्वितीयेनापि पुष्पाणि तृतीयेन प्रदीपकम्।।

चतुर्थेनाथ धूपं च पञ्चमेनैव तं यजेत्।
एवं कृत्वा यथापूर्वं व्योममुद्रां च दर्शयेत्।।

अथोपस्थानमन्त्रेण कृत्वोपस्थानमन्ततः।
उद्वासयेत् ततो देवं सूर्यबीजेन साधकः।।

द्रष्टव्या ब्रह्मरात्रे तु मन्त्रा वै मन्त्रकोशके।
वक्ष्यामि तिथियागं तु सर्वसंवत्सरावधि।।

उपो वाग्यतो भूत्वा सप्तम्यां संयतेन्द्रियः।
रक्तचन्दनचूर्णेन चक्रं कृत्वा यथाविधि।।

पूजयेद्भास्करं देवं विविधैर्द्रव्यविस्तरैः।
कमलैः करवीरैश्च सुरक्तैः कुसुमैरपि।।

रक्तचन्द्रनगन्धेन कृसरापूपपायसैः।
पूजयित्वा यथाकाममिष्टान् कामानवाप्नुयात्।।[65]

महर्षि मरीचि का कहना है कि देवालय के द्वितीयावरण में प्राग्द्वार (पूर्व दिशा के द्वार) के उत्तरभाग में पश्चिमाभिमुख हुए रक्तवर्ण वाला, शुक्ल (श्वेत) वस्तु धारण किए, दो भुजा वाले, पद्महस्तवाले, सप्ताश्ववाहनों से युक्त हय (अश्व) ध्वजा वाले, रेणुका और सुवर्चला देवियों के पति 'ख' कार बीज तथा आब्धिघोष—तुल्यवर्णवाले, सहस्रकिरणों वाले, जिनके मस्तक में मण्डलाकार (वृत्ताकार) तथा श्रावणमास के हस्त नक्षत्र में पैदा हुए 'आदित्य' का आवाहन 'आदित्य, भास्कर, मार्तण्ड, विवस्वन्त नाम से करना चाहिए।'[66] महर्षि अत्रि का कहना है—**आदित्यमतिरक्ताभं पद्मपुष्पधरं परम्।**[67]

भृगुप्रोक्त *क्रियाधिकार* में वर्णित लक्षण प्रायः विमानार्चनकल्प के सदृश ही है। यहाँ पर विशेषता यह है कि ये द्विपाद तथा चतुष्पाद हैं, साथ ही सारथि, अनुरु तथा ध्वज को सर्प या तुरग माना गया है।[68]

महाभागभृगु के ग्रन्थ *खिलाधिकार* में मार्तण्ड का स्वरूप प्रतिपादित है, जो उन्हीं के ग्रन्थ क्रियाधिकार में वर्णित लक्षणों से अतिरिक्त अधिक लक्षण वर्णित हैं। यहाँ आदित्य का बहुसंख्या बारह है। व्याघ्र चर्म धारण किये हुए हैं तथा इनके पार्श्व में दो मुनियों की उपस्थिति बतायी गयी है, स्वर्णमाली-वैखानस मुनि और बलिजित्-बालखिल्य के नाम से प्रसिद्ध है। इनका देह क्रमशः सित (सफेद) तथा असित (काले) वर्ण से वर्णित हैं।[69]

महर्षि भृगु अपने ग्रन्थ *क्रियाधिकार* में कहते हैं कि रवि, गुह, विघ्नेश, दुर्गा, सरस्वती तथा ज्येष्ठा की स्वतन्त्र प्रतिष्ठा करके भक्तिभाव से अर्चना करनी चाहिए। *खिलाधिकार* में विस्तारपूर्वक मैंने व्यवस्था दे रखी है।[70]

मुनि अत्रि प्रोक्त *समूर्त्तार्चनाधिकरण* ग्रन्थ का समापन 'सूर्यकल्प' वर्णन के साथ होता है। खिलाधिकार में भी 'सूर्यकल्प' का स्वतन्त्र एवं पृथक् अध्याय ही है।[71] अत्रि का अभिमत है कि विष्णुशक्ति से युक्त सूर्य वैष्णव तेज से दहकता है।[72] सौम्य विधि से सूर्य की अर्चना वृद्धिदायी होती है।[73] ग्रामादि में सूर्य के देवालय-निर्माण विधि बतायी गयी है। वास्तुशास्त्रोक्त विधि सम्मत विमान वित्तानुसार बनाने का निर्देश है।

कर्षणादि प्रतिष्ठान्त पर्यन्त विषय प्रतिपादित हैं। ग्राम के ऐन्द्राग्नेय, पूर्वदिशा अथवा दक्षिणाभिमुख मन्दिर-निर्माण मान्य है। दक्षिणोत्तरमुख कदापि नहीं होना चाहिए।[74]

सूर्य प्रतिमा नवार्धतालमान की होनी चाहिए। देवियों से समायुक्त द्विपाद, द्विभुज, हाथ में पद्म धारण किये हुए पद्मासन में स्थित वर्णित है—

नवार्धतालमानेन कारयेत्प्रतिमां रवेः।
देवीभ्यां च समायुक्तं द्विपादं द्विभुजं विभुम्।।
हस्तौ पद्मधरौ कुर्यात्स्थितं पद्मासने तथा।
कारयेन्मण्डलं मूर्ध्नि प्रवालसदृशप्रभम्।
कुर्यात् सुवर्चलां देवीं प्रवालाभां च दक्षिणे।।
रेणुकां रक्तवर्णां च कुर्यात्तद्वामपार्श्वतः।
स्थूलदण्डं प्रवालाभां शङ्खाभां शङ्खिलं क्रमात्।
पूजकौ च ऋषि चौभौ शैषिकं वाहनं तथा।
भूतस्थाने तं भूतेशं कृत्वा स्थापनमाचरेत्।।[75]

सूर्यमूर्त्ति का प्रतिष्ठाकाल अधोलिखित है—

परमकृपालु श्रीपरशुराम सर्वसाधारण-क्रम में उपासना विधि बताते हुए कहते हैं कि रश्मि ही किरण है। किरणें प्रकाश का कारण हैं। इसलिए रश्मियाँ भी प्रकाश मानी जाती हैं। रश्मिमाला के सभी मन्त्र स्वयं प्रकाश और प्रकाशक होते हैं। माला शब्द भी पारिभाषिक है। बीस मन्त्रों से अधिक के समूह को माला मन्त्र कहते हैं। गायत्री सहित महापादुका मन्त्र को भी प्रकाशक और 20 वर्णों से अधिक होने के कारण मालामन्त्र कहा जाता है—

रश्मिरिति प्रकाशापरपर्यायः। मालेति मन्त्रविशेषसंज्ञा। तदुक्तं नित्यातन्त्रे –

'मन्त्रा एकाक्षराः पिण्डाः कर्त्तव्या द्व्यक्षरा मताः।
बहुवर्षं समारम्भनवार्णावधि बीजकाः।
ततो दर्शाणमारभ्य यावत् विंशतिमन्त्रकाः।
तत् ऊर्ध्वं गता मालास्तासु भेदो न विद्यते।'

इत्थं च गायत्र्यादिमहापादुकान्तस्य प्रकाशकत्वाद् विंशतिवर्णाधिकत्वाच्च रश्मिमालेति वक्ष्यमाणमन्त्रकलापसंज्ञा।।[76]

नींद की अवस्था सुप्तावस्था होती है। सुषुप्ति का परित्याग ब्राह्म मुहूर्त में उपासक वर्ग स्वभावतः कर देता है। उसे प्रबोध का लक्षण कहते हैं। प्रबोध के अव्यवहितोत्तर रश्मिमाला मन्त्र का मानसिक आवर्त्तन होना

चाहिए। उस महत्त्वपूर्ण क्षण में इसके स्मरण से नया आयाम खुलता है। इसके तुरन्त बाद ब्रह्मरन्ध्र में गुरु के ध्यान का भी विधान है। यह प्रातःकालीन कृत्य है।[77]

रश्मिमाला के अन्तर्गत आने वाले मन्त्र रश्मिपञ्चक मन्त्र कहलाते हैं। ये ब्रह्मरूप स्वप्रकाश तत्त्व की वागात्मक रश्मियाँ हैं। इनका साक्षात्कार मन्त्रद्रष्टा मनीषी ऋषियों ने किया है। ये पाँच हैं—

1. गायत्री मन्त्र

इसमें 24 अक्षर होते हैं। जब ओङ्कार भूः भुवः और स्वः रूप छः वर्णों को इसके साथ लगाकर बोलते हैं, तो यह तीस वर्णों वाली हो जाती है। यह मूलाधार की बीजरूप से विमृष्टव्य है।

2. ऐन्द्री रश्मि

यह इन्द्रदैवत्या रश्मि है। इन्द्र एक वैदिक देवता है। यह सङ्कटों से रक्षा करता है। श्री पाददामोदर सातवलेकर ने *इन्द्रशक्ति का विकास* एक ग्रन्थ लिखा है। उसमें इन्द्रशक्ति का विशद विवेचन है। यह रश्मि 67 वर्णों में पूर्ण होती है। ऋग्वेद का यह मन्त्र है। वहाँ से इसकी व्याख्या देखनी चाहिए। इसको हृदय बीज के रूप में विमृष्ट करना चाहिए।

3. सौरी रश्मि

इसके विमर्श से स्वात्म में तैजसिकता का विकास होता है। इसमें प्रणव, घृणि, सूर्य और आदित्य रूप शब्दों के आठ वर्ण सौरी दिव्यता के प्रतीक वर्ण हैं। यह आज्ञा बीज रूप से ही विमृश्य है।

4. प्रणवरश्मि

यद्यपि *गीता* इसे एकाक्षर ब्रह्म ही मानती है। फिर भी वर्णात्मिका विद्या होने के कारण रश्मि भी है। इसे ब्रह्मरन्ध्र में विमृष्ट करना चाहिए।

5. तुर्यगायत्री

नवार्णा विद्या है। चिदैक्य-समापत्ति की मूल हेतु है। गायत्री के चतुर्थ चरण के रूप में इसका जप करना गायत्री साधक के लिए अनिवार्य माना जाता है। आठ माला गायत्री मन्त्र जप कर एक माला इस मन्त्र का जप करना विश्वामित्रकल्प का निर्देश है। इसका उच्चारण नहीं किया जाता। इसे द्वादशान्त बीज रूप से विमृष्ट करते हैं। शरीरस्थ जिन चक्रों में विमर्श करने का निर्देश है, उनका ज्ञान साधक को होना चाहिए। विशेष रूप से ब्रह्मरन्ध्र और द्वादशान्त शब्दों का ज्ञान और प्रयोग रूप से वहाँ तक पहुँचना साधना का विषय है। इसे सद्गुरु से जानना चाहिए।[78]

सोलह मन्त्रों से समन्वित समष्टिरूपिणी यह चक्षुष्मतीविद्या है। मूलाधार में ध्यानावस्थित होकर इसका जप किया जाता है। प्रस्तुत विद्या के सिद्ध होने पर साधक अन्य देश अथवा द्वीप में स्थित धन तथा अन्य पदार्थों को यथावत्-रूप से देख तथा जान जाता है। विधान अधोलिखित है—

विनियोग—

चक्षुष्मतीमन्त्रस्य भार्गव ऋषिः, नाना छन्दांसि,
चक्षुष्मतीदेवता, तत्प्रीत्यर्थे विनियोगः।

ध्यान—

चक्षुस्तेजोमयं पुष्पं कन्दुकं विभ्रतीं करैः।
रौप्यसिंहासनारूढां देवीं चक्षुष्मतीं भजे।।

चक्षुष्मतीविद्या का पाठ

सूर्याक्षितेजसे नमः। खेचराय नमः। असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय। उष्णो भगवान् शुचिरूपः। हंसो भवान् शुचिप्रतिरूपः।

विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं हिरण्मयं ज्योतिरेकं तपन्तं सहस्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः प्राणः प्रजानामुदत्येष सूर्यः। ॐ नमो भगवते सूर्याय अहोवाहिनि वाहिन्यहो वाहिनि वाहिनि स्वाहा।

वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियं मेधा ऋषयो नाथमानाः।
अपध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान्।।
पुण्डरीकाक्षाय नमः। पुष्करेक्षणाय नमः। अमलेक्षणाय नमः।
कमलेक्षणाय नमः विश्वरूपाय नमः। श्री महाविष्णवे नमः।।
इति षोडशमन्त्रसमष्टिरूपिणी चाक्षुष्मतीविद्या दूरदृष्टिप्रदा।[79]

शक्तिसंगमतन्त्र के षड्दर्शन प्रकरण एवं आगमसन्दोह अध्याय में भी सौर सम्प्रदाय का उल्लेख है। पर्यायसप्तक वर्णन करते समय सौरतन्त्र का वर्णित है। भगवान् सूर्य में अनुरक्त, उनकी उपासना करने वाले को यहाँ सौर सम्प्रदाय अनुयामी बताया गया है।[80] सौर मत के पाँच भेद यहाँ निर्दिष्ट हैं[81] किन्तु नामों का उल्लेख नहीं है। अर्घ्यप्रकरण तथा वरदानाधिकरण में भी सौर सम्प्रदाय की चर्चा है।[82] नेत्रतन्त्र में भगवान् सूर्य की ध्यानविधि वर्णित है।[83] डॉ. तून गाद्रियान ने *सौरसंहिता* (तन्त्र), *देवीरहस्यतन्त्र, मायावामनसंहिता* में सूर्योपासनापरक तन्त्रों के रूप में निर्देशन किया है।[84] तान्त्रिक साहित्य में इनका विवरण वर्णित है।[85] गीतकाव्यों से इनके परिवार के बारे में प्रकाश मिलता है,[86] तदनुसार वह कमलादेवी से कलिंगुरठ में उत्पन्न

हुए थे।[87] उन्हें पूर्व दिशा का देवता तथा स्वर्णवर्णी (सुनहरे रंग वाला) कहा जाता है।[88] 'सूर्यकोवुल-मुरय' नामक ग्रन्थ में सूर्य के विवाह से सम्बन्धित रोचक कथा प्राप्त होती है।[89]

श्री वैखानस आर्ष भगवच्छा में आदित्य की आराधना का प्रचुर विवेचन प्राप्त होता है। *वैखानस गृह्यसूत्र* में 'आदित्य' का अर्चन 'ग्रहमख' या ग्रहशान्ति के अवसर पर वर्णित है। ग्रहमख का प्रयोजन बताते हुए कि—

ग्रहायत्ता लोकयात्रा। तस्मादात्मविरुद्धे प्राप्ते ग्रहान् सम्यक् पूजयति।[90]

लोकजीवन ग्रहाधीन होता है। अस्तु उसके विपरीत होने पर ग्रहों का भलीभाँति पूजन करना चाहिए। आदित्य के चतुरस्र-मण्डल-रूप-पीठ का निर्माण करके वहाँ रक्तवर्ण और अग्नि अधिदेवता को रखकर मध्यभाग में उनकी आराधना करनी चाहिए। इनके प्रत्यधिदेवता ईश्वर का निरूपण व्याख्याकार श्रीनिवासमखि ने सूत्र तात्पर्यमणि व्याख्या में किया है।[91] आदित्य की करवीर आदि रक्तवर्णवाले पुष्पों से अर्चना करके शुद्धौदन निवेदन किया जाता है।[92] इनको त्रिमधुयुक्त अर्क की समिधाओं द्वारा 'आ सत्येन' मन्त्र से 108 आहुति अथवा 27 आहुति प्रदान की जाती है। इनका हवन वैदिकविधान से अग्नि प्रतिष्ठापन कर के 'सभ्य' नामक अग्निकुण्ड में किया जाता है। इनके अधिदेवता के लिए 'अग्निदूतम्' मन्त्र से आहुति प्रदान की जाती है। अन्य ग्रह-देवताओं को भी उक्त संख्या में ही आहुति देने का निर्देश है। अशक्तावस्था में एक बार से भी काम हो सकता है।[93]

आदित्य के लिए 'रक्तधेनुमादित्याय'[94] रक्तवर्णवाली गाय को दान देने के लिए कहा गया है। इस प्रकार नवग्रह-पूजन द्वारा ग्रहदोषोत्पन्न सभी दु:ख तथा व्याधियाँ शान्त हो जाती हैं।[95]

उपर्युक्त विवेचना में महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि अन्य सभी सूत्रकार सूर्य का वृत्ताकारमण्डल बताते हैं, किन्तु एकमात्र विखनस ने ही सूर्य का चतुरस्र मण्डल स्वीकार किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि तात्कालिक समय अर्थात् विखनस मुनि के काल स्वायम्भूव मन्वन्तर में आदित्य का चतुरस्र मण्डल स्वरूप रहा हो। कालान्तर में सावर्णिक मन्वन्तर के समय में सूर्य का मण्डल वृत्ताकार हुआ हो।

वैखानस आगम विशुद्ध रूप से विष्णु-आराधन-परक शास्त्र है। इसमें विष्णु के अङ्गभूत आराध्य आदित्य के प्रसंग प्राप्त होते हैं। ये प्रसंग पुराणादि के प्रसंगों से इतर है। मन्वन्तर-भेद भी इनका कारण हो सकता है।

सूर्य की उपासना भारतीय जीवन का अनिवार्य अङ्ग है। सूर्य से सम्बन्धित वैदिक मन्त्रों के समूह को 'सौर' शब्द की संज्ञा दी गयी है। '*तृचभास्कर*'[96] में सूर्योपासना के प्रधान कृत्य 'तृचार्घ्यदान' पर विशद विवेचन किया गया है। तृचभास्कर में सूर्यसम्बन्धी सभी साहित्यों की गम्भीर गवेषणा है।

'तृचभास्कर' का पूर्वार्ध पूजा सम्बन्धी विविध विचारों का संकलन है; उत्तरार्द्ध में प्रयोगविधि का निरूपण है। चतुर्विध पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए देह आवश्यक है।[97] देह में रोग होता ही है।[98] इन रोगों का

जनक 'कर्म' है। इनका निवारण **कर्मणा कर्म हन्यते** से सम्भव है। वह कर्म विविध देवों से तन्त्र-ग्रन्थों में विविध प्रकार से उपलब्ध होता है। उनमें भी मात्र अनुमान तथा आगम आदि प्राप्त देवों की तुलना में सूर्य देव प्रत्यक्ष प्रमाण से पुष्ट तथा आगम से प्रमाणित—**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च** आदि मन्त्रों से सूर्य की सर्वाधिक सबलता सिद्ध है।[99] सूर्य ही वेदमाता गायत्री से प्रतिपादित हैं। उपर्युक्त विवेचना से सर्वदेवोत्तमत्व प्रमाणित है। सौरमत में पुरुषसूक्त अर्थ सूर्य-परक होता है।

पूजा के अङ्गभूत विधियों का विस्तार से उल्लेख है। भूशुद्धि, भूतशुद्धि तथा मातृकान्यासादि विषयों में जो सुस्पष्टता तथा प्रामाणिकता प्रतिपादित है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। त्रैवर्णिकों के लिए क्रमशः ब्रह्मचारियों के लिए—संहार, स्थिति तथा सृष्टि क्रम है। गृहस्थों के लिए संहार, सृष्टि तथा स्थिति क्रम तथा वानप्रस्थ एवं यतियों के लिए सृष्टि, स्थिति तथा संहार क्रम का उल्लेख है।

'तृच' मन्त्र के न्यास के सन्दर्भ में नाना मत-मतों का उल्लेख है। करशुद्धिन्यास, द्वादशाङ्गन्यास, भास्करादिनामन्यास, कवचन्यास, पुरुषसूक्तन्यास एवं पीठन्यासादि का विविध स्रोतों से संग्रह किया गया है।

पूजा-प्रकरण पाञ्चरात्रागम पद्धति के अनुसार मान्य है। पञ्चविध-पञ्चकाल का निरूपण-अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय तथा योग के रूप में प्रतिपादित है। वस्तुतः यह आचार मीमांसा है—

देवताऽऽयतनं गत्वा तत्संमार्ज्योपलिप्य च।
निर्माल्यादिकमुद्धार्य तच्चाऽभिगमनं मतम्।।
उपादानं तु गन्धादियावत्साधनसङ्ग्रहम्।
इज्या तु पीठपूजादिसाङ्गावरणपूजनम्।।
स्वाध्यायोऽर्थानुसन्धानं स्तोत्रपाठो मनोर्जपः।
स्वस्य देवतया तस्याः स्वेन वाऽभेदचिन्तनम्।।
योगं इत्युच्यते सद्भिरित्थं पूजा तु पञ्चधा।।[100]

देवता के साथ अभेद-चिन्तन ही योग है और इसे ही तन्त्रों में 'अन्तर्याग' शब्द से कहा गया है। आगे कहा गया है कि 'मुक्ति' पाँच प्रकार की है—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि और सायुज्य। यह पाँचों प्रकार की मुक्ति पूर्वोक्त पूजा से मिल सकती है—

सालोक्यं चैव सामीप्यं सारूपं सार्ष्टिरेव च।
सायुज्यं चेति पञ्चानां मुक्तीनां जनिका इमाः।।[101]

सूर्य यन्त्र का स्वरूप भी यहाँ वर्णित एवं चित्र प्रकाशित है।[102] *श्रीवाल्मीकिरामायण* में आदित्यहृदय-स्तोत्र[103] तथा *भविष्यपुराण* में सूर्यसहस्रनाम वर्णित है।

सन्दर्भ

1. सूर्यासक्तमना यस्तु स सौरः परिकीर्तितः। — *शक्तिसंगमतन्त्र*, 1/8/30
2. ॐ घृणिः सूर्य आदित्योम्।
3. *महाभारत*, द्रोणपर्व, 82/16
4. सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च, *ऋग्वेद*, 1/115/1, *यजुर्वेद*, 7/42
5. *वाल्मीकिरायण*, युद्धकाण्ड, 105/8
6. *अमरकोष*, 1/3/28-31
7. *शतपथब्राह्मण*, 1/2/8
8. *अथर्ववेद*, 2/21/1-5
9. *निरुक्त*, 12/10
10. *निरुक्तभाष्य*, 12/9
11. सूर्यः सरति भूतेषु वीरयति तानि वा।
    सु ईर्यत्वाय यात्येषु सर्वकार्याणि सन्दधत्। — *बृहद्देवता*, 7/128
12. सैषा त्रयी एव विद्या तपति। — *शतपथब्राह्मण*, 10/5/2/2
13. असौ वा आदित्यो देवमधु तस्य द्यौरेव तिरश्चीनवंशोऽन्तरीक्षमपूयो मरीचयः पुत्राः। छा.उ. 3/1 तस्य ये प्राञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्राच्यो मधुनाड्यः। ऋच एव मधुकृत ऋग्वेद एवं पुष्पं वा अमृता आपः 3/3. अथ येऽस्य दक्षिणा रश्मयस्ता एवास्य दक्षिणा मधुनाड्य यजूष्येव मधुकृतो यजुर्वेद एव पुष्पम् 3/2/1. अथ येऽस्योदञ्चो रश्मयस्ता एवास्योदीच्यो मधुनाड्योऽथर्वाङ्गिरस एव मधुकृत इतिहासपुराणं पुष्पं ता अमृता आपः। तद्यत्प्रथममृतं तद्वसव उपजीवन्त्यग्निना मुखेन। अथ यद्द्वितीयममृतं तद्रुद्रा उपजीवन्तीन्द्रेण मुखेन। अथ यत्तृतीयममृतं तदादित्या उपजीव्यन्ति वरुणमुखेन। अथ यच्चतुर्थममृतं तन्मरुत्त उपजीवन्ति सोमेन मुखेन। अथ यत्पञ्चममृतं तत्साध्या उपजीवन्ति ब्रह्मणा मुखेन। *छान्दोग्योपनिषद्*, अध्याय 3, खण्ड 1-10.
14. *दी ऋग्वेदिक कल्चर आफ दि प्रि हिस्टारिक इण्डस्*, पृ. 110, स्वामी शङ्करानन्द।
15. *साम्बपञ्चाशिका*-7
16. यस्मिन् सोमः सुरपितृनरैरन्वहं पीयमानः क्षीणः क्षीणः प्रविशति यतो वर्धते चापि भूयः।
    यस्मिन् वेदा मधुनि सरधाकारवद्भान्ति चाग्रे तच्चण्डांशोरमृतममितं मण्डलस्थं प्रपद्ये।।
    — *साम्बपञ्चाशिका*-8
17. तन्त्रायिणे नमः। अध्याय-38 कं. 12
18. आदित्यो ब्रह्म मूर्त्तं विशति यदखिलं व्याप्य चार्कः स्वधाम्ना,
    नाभौ संगृह्य चक्रं ह्यरधृतवलयं वर्त्म छन्दो विभर्ति।
    सूते सूर्यश्च पूषाऽवति च बृहद्दृततं जक्षतीदं च रुद्रः,
    प्राणान् ॐ प्राणिनद्ध्रीं घृणिरिति हृदयं सून्म एकर्षयेऽर्धम्।।
    जपसूत्रम्, वोल्यूम-II- 103, प्रणेता स्वामी प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती, अनुवादिका एवं सम्पादिका, प्रो. प्रेमलता शर्मा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी-1, द्वि.सं. 2002 ई.
19. प्रत्यक्षं देवता सूर्यो जगच्चक्षुर्दिवाकरः।
    तस्मादभ्यधिका काचिद् देवता नास्ति शाश्वती।। — *भविष्यपुराण*, 1/48/21

20. यस्मादिदं जगज्जातं लयं यास्यति यत्र च।
कृतादिलक्षणः कालः स्मृतः साक्षाद्दिवाकरः।। — तत्रैव, 1/48/22
21. यस्येच्छया जगत्सर्वमुत्पन्नं सचराचरम्।
स्थितं प्रवर्तते चैव स्वार्थे चानु प्रवर्तते।। — तत्रैव, 1/48/25
22. प्रसादादस्य लोकोऽयं चेष्टमानः प्रदृश्यते। अस्मिन्नभ्युदिते सर्वमुदेत् स्तमिते सति।।
अस्तं यातीत्यदृश्येन किमेतत्कथ्यते मया।। — तत्रैव, 1/48/26.
23. इतिहासपुराणे अन्तरात्मेति गीयते।। — तत्रैव, 1/48/28.
24. तस्मादः परं नास्ति न भूतं न भविष्यति।
यो वै वेदेषु सर्वेषु परमात्मेति गीयते।। — तत्रैव, 1/48/27
25. आदित्यस्यादिदेवत्वादजातत्वादजः स्मृतः।
देवेषु स महान् देवो महादेवः स्मृतस्ततः।। — तत्रैव, 1/77/12
26. सर्वेशत्वाच्च लोकस्य अधीशत्वाच्च ईश्वरः।
बृहत्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भवत्वाद्भव उच्यते। — तत्रैव, 1/77/13
27. पाति यस्मा जाः सर्वाः प्रजापतिरतः स्मृतः।
पुरे शेते च वै यस्मात्तस्मात्पुरुष उच्यते।। — तत्रैव 1/77/14
28. नोत्पाद्यत्वादपूर्वत्वात्स्वयम्भूरिति विश्रुतः। — *भविष्यपुराण*, 1/77/15
29. हिरण्याण्डगतो यस्माद्ग्रहेशो वै दिवस्पतिः।
तस्माद्धिरण्यगर्भोऽसौ देवदेवो दिवाकरः।। — तत्रैव, 1/77/16
30. तत्रैव 1/77/19-30
31. तत्रैव, 1/67/15
32. तत्रैव 1/67/15
33. कच्चिद्धरेः सौम्य सुतः सदृक्ष आस्तेग्रणी रथिनां साधु साम्बः।
असूत यं जाम्बवती व्रताख्या देवं गुहं योऽम्बिकया धृतोग्रे।। — *श्रीमद्भागवतमहापुराण*, 3/1/30
34. वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धसाम्बा पञ्चवीराः इति विज्ञायते। — *कश्यपज्ञानकाण्ड*, अध्याय 84
35. *साम्बपञ्चाशिका*, क्षेमराजटीकासहित, सम्पादक - पं. गोपीनाथकविराज, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1992 ई.
36. *स्वच्छन्दतन्त्र*, 7/169.
37. *तन्त्रालोक*, 3/120
38. तत्रैव, 3/121 क, 'सूर्य प्रमाणमित्याहुः'।
39. *तन्त्रालोक*, 15/51-52
40. अर्यमा इन्द्र वरुणौ पूषा विष्णुर्गभस्तिमान्। मित्र समाख्यातस्त्वजघन्यो जघन्यकः।
विवस्वांश्चैव पर्जन्यो धाता वै द्वादशः स्मृतः। काश्यपेयान् विदुस्त्वेतान् तेषां तेजोनिधेरथ।।
— *स्वच्छन्दतन्त्र*, पटल 10/494-95
41. *स्वच्छन्दतन्त्र*, उद्योतटीका के साथ, पटल 10/496-499

42. *पूर्णता-प्रत्यभिज्ञा,* श्लोक 87-89
43. *गीता,* 10/21
44. *समूर्त्तार्चनाधिकरण, 83/1*
45. *प्राचीन भारत का इतिहास* — डॉ. भगवतशरण उपाध्याय, पृ. 306
46. *ईशानशिवगुरुदेवपद्धति,* पटल, 27/62-69
47. तत्रैव, 27/70
48. हेमाम्भोजनप्रवालप्रतिमनिजरुचिं चारुखट्वाङ्गपहनौ चक्रं शक्तिं सपाशं सृणिमतिरुचिरामक्षमालां कपालम्।
हस्ताम्भोजैर्दधानं त्रिनयनविलसद् वेदवक्त्राभिरामं मार्त्तण्डं वल्लभार्द्धं मणिमयमुकुटं हारदीप्तं भजामः।
— *शारदातिलकम्,* 14/71
49. एवं ध्यात्वा समावाह्य सम्पूज्य विधवद् रविम्। उपचारौर्यथापूर्वं शक्त्या शक्त्यानुरूपतः।
— *ईशानपद्धतिः, 27/71*
50. तत्रैव पटल, 27
51. तत्रैव पटल 27/95-96
52. *ईशानशिवगुरुदेवपद्धति,* पटल 27/114-15
53. *ईशानशिवगुरुदेवपद्धति,* पटल 27/114-15
54. *प्राणतोषिणी,* सम्पादक - डॉ. हरिवंशकुमार पाण्डेय, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी, 2000 ई., प्रथम भाग, अर्थकाण्डे चतुर्थ परिच्छेद, पृ. 571
55. *शाक्तानन्दतरङ्गिणी*, चतुर्थोल्लास।
56. *तृचभास्करः*, पृ. 121
57. *तृचभास्करः*, पृ. 122
58. *देवीपुराण,* अध्याय - 52
59. *सात्वतसंहिता*, अलशिङ्गभट्टभाष्य, 19-20
60. *सनत्कुमारसंहिता*, शिवरात्र, 1/142
61. गवयश्चित्रकूटश्च किरणः सर्वसुन्दरः। श्रीवत्सः पदनाभश्च बैराजो वृत्त एव च।
एते कार्या रवेरष्टौ प्रासादाः शुभलक्षणाः।। — *समराङ्गणसूत्रधार,* 58/10-11
62. *भविष्यपुराण,* 1/130/24-25
63. सूर्यमन्त्राः — रं बीजम्। व्योममुद्रायै नमः। चतुर्मुखाय गीर्वाधिपतये नमः। सर्वतेजसामुत्कृष्टतेजसे ज्वालामालिने नमः।
64. सूर्याङ्गानि वर्गोऽसि पाप्मानं मे वृद्धि। उपस्थानम्। प्रवर्गोऽसि पाप्मानं मे वृद्धि। मध्याह्ने। संवर्गोऽसि। सायम्। सप्तार्चिषे नमः। हुं फट् ठठ।
65. *सनत्कुमारसंहिता,* शिवरात्र, 1/142-165
66. द्वितीयावरणे प्राग्द्वारादुत्तरे पश्चिमाभिमुखो रक्तवर्णः शुक्लाम्बरधरो द्विभुजः पद्महस्तः सप्ताश्ववाहनो हयध्वजो रेणुकासुवर्चलापतिः-खकारबीजोऽब्धिघोषणरवः सहस्रकिरणो मण्डलावृतमौलिः श्रावणे मासि हस्तजः आदित्यः।
विमानार्चनकल्प, पटल-20
67. *समूर्त्तार्चनाधिकरण*, 21/29 ख.

68. मार्तण्ड: पद्महस्तश्च पृष्टे मंडलसंयुत:।।
श्रावणे हस्तजो देव्यौ रेणुका च सुवर्चला।।
सप्तसप्तिसमायुक्तो रथो वाहनमुच्यते।
अनुरुस्सारथिस्सर्पो ध्वजस्तुरग एव वा।। — *क्रियाधिकार* 5/152-154
69. बिम्बं मार्ताण्डस्य कुर्यात् पृष्ठे मण्डलसंयुतम्।।
चतुष्पादं कारयेच्च द्विपादमथवा रविम्। दोर्भिर्द्वादशभिर्युक्तं व्याघ्रचर्माम्बरं तथा।।
शुक्लाम्बरधरं चापि देवेशं रुक्मलोचनम्। आसीनं वा स्थितं वापि विधिवत् स्वस्तिकासने।।
यज्ञोपवीतिनं कुर्यात्सप्ताश्वै: सुदृढै: पुन:। आयुधैरपि संयुक्तं गदापाशादिशक्तिभि:।।
उल्लोलयन्तं विशिखं स्थाने चेत्सर्वमाचरेत्। दृष्टिं सानुग्रहं कुर्याद्दत्ताभयकरं पुन:।।
पत्नी सुर्चला नाम रेणुकेति च यां विदु:। शैषिकस्त्वमित: प्रोक्तो भास्करस्याग्निसन्निभ:।।
मुनि: कनकमाली स्याद् बलिजिच्च विचक्षण:। वैखानसो मुनिर्धीमान् स्वर्णमाली प्रकीर्तित:।।
बलिजिद् बालखिल्यश्च तावुभौ च सितासितौ। बडबा वाहनं तस्य विश्वरंहेति कीर्तित:।।
सर्वान् केतूंस्तथा कुर्यात्प्रमाणं शुकवर्णिन:। शुकनासाखुरानश्वान् रुक्मकेशान्तलोचनान्।।
देवी निजगपत्राङ्गा पिङ्गला बडवा मता। अरुणं वाहनस्थाने कपिलं रुक्मकेशकम्।।
— *खिलाधिकार, 15/39-48*
70. *क्रियाधिकार,* 17/25-26
71. *खिलाधिकार,* अध्याय-43
72. विष्णुशक्तियुतं सूर्यस्स तेजो वैष्णवं दधत्, *समूर्त्तार्चनाधिकरण* 83/1 ख.
73. तत्रैव, 83/2
74. (क) तत्रैव, 83/2-3
(ख) *खिलाधिकार,* 43/1-3
75. (क) *खिलाधिकार,* 43/4-6
(ख) *समूर्त्तार्चनाधिकरण,* 83/5-7
76. *परशुरामकल्पसूत्रम्,* दशमखण्ड, पृ. 232, प्रकाशित - सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2000 ई.
77. तत्रैव, दशमखण्ड, पृ. 232-33
78. *परशुरामकल्पसूत्रम्,* 233-234
79. तत्रैव, 235
80. *शक्तिसंगमतन्त्र*, 1/8/30
81. तत्रैव, 1/6/139
82. तत्रैव, 1/4/167, 2/58/55
83. तेजोमयमतो वक्ष्ये येन सिद्धिर्भवेन्नृणाम्। रक्तपद्मनिभाकरं लाक्षारससमप्रभम्।।17।।
सिन्दूरराशिवर्णाभं पद्मरागसमप्रभम्। कुसुम्भरागसङ्काशं दाडिमीकुसुमप्रभम्।।18।।
कल्पान्तवह्निसदृशमेकवक्त्रं त्रिलोचनम्। चतुर्भुजं महात्मानं वरदाभयपाणिकम्।।19।।
वज्रमेकेन हस्तेन रश्मिमेकेन धारयेत्। सप्ताश्वरथमारूढं नागयज्ञोपवीतिनम्।।20।।

रक्तमाल्याम्बरधरं रक्तगन्धानुलेपितम्। अथवाष्टभुजं देवि लोकपालायुधान्वितम्।।21।।
त्रिवक्त्रं घोरवदना त्रिनेत्रं विकृताननम्। अश्वोपरिसमारूढं पद्ममध्ये सदा यजेत्।।22।।
— *नेत्रतन्त्र,* 13/17-22

84. *हिन्दु तान्त्रिकलिटरेचर इन संस्कृत*, पृ. 11
85. *तान्त्रिक साहित्य,* पं. गोपीनाथ कविराज, पृ. 317 तथा 717
86. सन् इन सिंहलफोकलोर विद ए स्टडी आफ ए ब्राञ्च स्टेच्यूट आफ सूर्य इन दी कोलम्बो म्यूजियम बाई डि-सिल्वा, सी.एम. आस्टिन, जर्नल आफ द नेशनल म्यूजियम ऑफ सीलोन, खण्ड 1, मार्च 1965, पृ. 51 तथा आगे।
87. तत्रैव।
88. तत्रैव।
89. तत्रैव।
90. *वैखानसगृह्यसूत्रम्,* भाग 2, 4/13/2-3, आर. पार्थसारथि भट्टाचार्य, तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् तिरुपति, 1997 ई.
91. तत्रैव, व्याख्या, पृ. 659
92. तत्रैव, 4/13/8-9
93. तत्रैव, 4/14 व्याख्या, पृ. 666
94. तत्रैव, 4/14/4
95. एतेन नवग्रहजा दु:खा व्याधय: शान्तिं यान्ति। — तत्रैव, 4/14/7
96. *तृचभास्कर:,* श्रीमद्भास्कररायप्रणीत, गायकवाड ओरियेण्टल सीरीज, बड़ौदा, 1982 ई.
97. शरीरमाद्यु खलु धर्मसाधनम्, *कुमारसम्भव,* कालिदास।
98. शरीरं व्याधिमन्दिरम्।
99. दिनेशं प्रवदन्त्यन्ये सर्वेशं वेदवादिन:।
स्तुवन्ति चैव गायत्र्या सायं प्रातरतन्द्रिता:।। — *भागवत,* तृतीयस्कन्ध।
100. (क) *तृचभास्कर:*, पृ. 24
(ख) *जयाख्यसंहिता,* पटल-22
(ग) *पाञ्चरात्ररक्षा*, श्रीवेदान्तदेशिक, पञ्चकाल पर केन्द्रित व्याख्या सम्पूर्ण ग्रन्थ में है।
101. *तृचभास्कर:*, पृ. 24
102. तत्रैव, पृ. 119-20
103. *युद्धकाण्ड*, 105वां सर्ग।

सहायक आचार्य, धर्मागम विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी-221005

प्रतिभा एवम् कुण्डलिनी योग की अभिन्नता

डॉ. आशुतोष आङ्गिरस

1. मनुष्य उभयधर्मी प्राणी है — वह एक साथ दो विश्वों में रहता है।
2. एक जो विश्व उसे दिया गया है — प्रकृति, जड़, चेतन का विश्व।
3. दूसरा — प्रतीकों का विश्व है— जो उसने स्वयं निर्मित किया है — अपनी विचार प्रक्रिया में भाषात्मक, गणितीय, चित्रात्मक, संगीतात्मक, कर्मकाण्ड सम्बन्धी आदि विभिन्न प्रकार की प्रतीक प्रणालियों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार की प्रतीक-प्रणालियों के अभाव में कोई कला, साहित्य, विज्ञान, विधियाँ, दर्शन सम्भव नहीं। इनके अभाव में सभ्यता का आरम्भ ही सम्भव नहीं है। अत: प्रतीक अपरिहार्य हैं।
4. अब समस्या है इन दोनों प्रदत्तों और प्रतीकों के सम्बन्धों को परिभाषित करने की, दोनों के सम्बन्ध को सुलझाने की ।
5. और यह कार्य कुण्डलिनी योग के साधकों ऋषियों, मुनियों योगियों ने अपने प्रातिभ दृष्टि एवम् प्रातिभ व्यवहार से किया है।
6. लेकिन आप और मैं यह जानते हुए भी कि विचार अनिवार्य है परन्तु विचार की अपूर्णता के कारण इस वक्त समाज जो भावनात्मक और बौद्धिक द्वन्द्व (क्रायसिस) झेल रहा उसका निस्तार या समाधान कुण्डलिनी योग के व्यवहार एवम् वैचारिकता से आप और हम कैसे कर सकते हैं?
7. इस कुण्डलिनी योग की संगोष्ठी के औचित्य का—एक भारतीय सन्दर्भ है और दूसरा वैश्विक सन्दर्भ है।
8. जिसके कारण कुण्डलिनी योग की उपयोगितापूर्ण व्याख्या निम्नांकित समस्याओं के सन्दर्भ में की जाए—
   (1) केन्द्र (अस्ति) से परिधि (भवति) के सम्बन्ध के स्पष्टीकरण के सन्दर्भ में
   (2) जड, चेतन, प्रकृति आदि जो प्रदत्त हैं और उनके लिए किए जाने प्रतीकों के सम्बन्धों और विभिन्न प्रतीकों के अन्तरङ्ग सम्बन्धों को परिभाषित करने के सन्दर्भ में
   (3) विचार एवम् व्यवहार की अनिवार्यता और अपर्याप्तता के सन्दर्भ में
   (4) शब्दों, भावों और परिस्थितियों के सामञ्जस्य के अभाव के सन्दर्भ में
   (5) बुद्धिगत और भावनागत उत्पन्न हो रहे क्रायसिस की व्याख्या के सन्दर्भ में
   (6) भाषाई अतिवाद और अनाचार की सीमा और
   (7) to be somebody से to be no body की यात्रा के सन्दर्भ में

कुण्डलिनी योग के साधक ऋषियों मुनियों का व्यवहार

9. यह जमाना 21वीं शताब्दी से उतना ही दूर था जितना सुपरसोनिक से कोई गर्दभ। रफ्तार भी वही। हर चीज ढीली-ढाली थी, और लोग देखने में गंवार से लगते थे। दाढ़ी बढ़ी हुई, बाल बिखरे हुए, विचार उलझे हुए।
10. पर वे बीसवीं शताब्दी के लोगों की ओर उंगली उठा कर कह रहे थे -
11. "उन मूर्खों को देखो। वे अधिक खाने के लोभ में अपने समुद्र और आसमान तक को खाते जा रहे हैं। अपने भविष्य को खाते जा रहे हैं और, फिर भी, अपने को विज्ञानी समझते हैं।"
12. वे हजारों साल की दूरी के आस-पास देख रहे थे, जैसे समय भी उनके लिए किसी मैदान की तरह सपाट हो। उनके इस उपहास को सुन कर अपनी 21वीं शताब्दी के ज्ञान पर गरूर करने वाला मैं शर्म से सिर तक नहीं उठा पा रहा था।
13. उनके इस तरह हँसने का कुछ अधिकार भी था,
14. क्योंकि
15. उनकी नदियाँ सिर्फ बरसात में मैली होती थीं, उनका आसमान सिर्फ आँधी चलने पर मैला होता था, उनकी धूप केवल बादल घिरने पर मैली होती थी, उनके विचार केवल आवेग की प्रखरता में मैले होते थे, उनका शरीर केवल काम करते समय मैला होता था, उनकी आत्मा तो मैली होती ही नहीं थी। वे हंसते थे तो उनकी हंसी में उनका आह्लाद झलकता था, दर्प झलकता था, व्यंग्य झलकता था, पर मन की मलिनता नहीं झलतती थी। वह उनके दिल दिमाग में कहीं थी ही नहीं। वे बहुत कम दुखी होते थे, क्योंकि दुख की उनकी परिभाषा भिन्न थी। हमारी परिभाषा के बहुत से दुखों को वे चुपचाप पी जाते थे, मानो वह दुख हो ही नहीं। पर जब दुख उनकी परिभाषा के अनुसार भी दुख बन जाता था तो उससे आँसू के स्थान पर दर्शन टपकने लगता था। उनके चेहरे पर ज्ञान तेज और तुष्टि बन कर झलकता था।
16. उनकी जरूरतें बहुत कम थीं। वे सब कुछ अपने लिए नहीं चाहते थे। पेट भरने के बाद उनकी भूख तेज नहीं होती थी।
17. वे बहुत कम चीजों से डरते थे, बहुत अधिक चीजों पर भरोसा करते थे और घृणा तो किसी चीज से करते ही नहीं थे।
18. उस युग में पहले से चले आ रहे विचारों और विश्वासों को वे ऐसे उलट-पलट रहे थे कि लगता था कोई चीज अपनी सही जगह पर रह ही नहीं पाएगी । उनके ज्ञान के साधन बहुत सीमित और अविश्वसनीय थे, पर वे जो कुछ सोचते थे बहुत साफ सोचते थे क्योंकि वे निडर हो कर सोचते थे। वे खुद भी नहीं जानते थे कि इतना सोच कर वे करेंगे क्या और अपने ओजस्वी विचारों को रखेंगे कहाँ।
19. वे कुछ जानने के लिए नहीं सोचते थे। जाने हुए का आनन्द लेने के लिए सोचते थे। उसे जीवन में उतारने के लिए सोचते थे। सोचते रहने के लिए सोचते थे। उन लोगों को दुनिया की हर बात मालूम थी।

जो हो चुकी थी वह भी, जो होने वाली थी वह भी, और जो नहीं हो सकती थी वह भी। उनकी आँखों के आगे तीनों काल और सातों लोक आँख झपकते ही खुल जाते थे।

20. उनकी ज्ञानमीमांसा में ज्ञान ज्ञान नहीं था, परले दरजे का अज्ञान था। उनका मानना था कि इससे आदमी आदमी की तरह रहने की जगह चालाक जानवरों की तरह रहने लगता है। बहुत अधिक खाता है, बहुत अधिक पीता है, बहुत अधिक भोगता है, इन्द्रियों का बहुत अधिक गुलाम बनता जाता है और जीवन मरण के चक्र में बहुत अधिक उलझता जाता है। वह अपनी चालाकी में भी मूर्खता ही करता है, क्योंकि कालदेव के लिए अपने शरीर को बकरे की तरह पाल कर मोटा करने के अतिरिक्त वह और क्या करता है? असली ज्ञान तो जीवन और जगत के प्रति सही दृष्टिकोण है। एक विचित्र बात यह थी कि उन्हें अज्ञान से भी उतना ही प्रेम था जितना ज्ञान से था। वे कहते थे इस दुनिया में शत्रु भाव से न रहो। मैत्री से रहना सीखो।

21. उनका दर्शन आज भी इतना प्राणवान् है कि लगता है, इसे हमारे युग के गम्भीर सवालों को ही ले कर लिखा गया है।

22. वे दुनिया की चिन्ता न करते हुए भी अपनी दुनिया से अधिक हमारी दुनिया के बारे में सोच रहे थे- पर्यावरण के ध्वंस पर, प्राकृतिक साधनों के अपव्यय पर, उपभोक्ता संस्कृति की विकृतियों पर, विज्ञान के पागलपन पर, मानवमूल्यों के ह्रास पर, संवेदन शून्यता की विडंबना पर और भाषा के दुष्प्रयोग पर। इस दृष्टि से वे आज के महान् से महान् वैज्ञानिक की तुलना में भी अधिक दूरदर्शी थे। इन्हीं कहानियों को पढ़ते हुए दुनिया से होते हुए अपनी दुनिया में प्रवेश करने का छोटा रास्ता निकालने की एक कोशिश हम यहाँ करने जा रहे हैं। इसमें सफल हो पाते हैं या नहीं, यह तो आगे चल कर ही पता चलेगा। एक बात तय है। जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं और जिस पर एक भारतीय के नाते हमें सचमुच गर्व है उसकी प्राणवायु उनका प्रातिभ चिन्तन ही है।

23. इसी प्रातिभ चिन्तन एवम् व्यवहार के विषय में त्रिपुरा-रहस्य में भगवती ने कहा है—**परा सा प्रतिभा देव्याः परं रूपं ममेरितम्।**[1]

24. वेद में जो धी, मनीषा, मेधा, प्रज्ञा आदि शब्द प्रयोग हुआ है उसमें से भी रचनात्मक उसी लोकालोकमयी अर्थ-प्रतिभा का पता चलता है। अथवा वाक्सूक्तों में जहाँ तहाँ भी **सा इमाः प्रजाः असृजत्**[2] आदि वाक्यों द्वारा वाक्तत्त्व का लोकोत्तर चमत्कारपूर्ण वर्णन आया है या **चत्वारि वाक्परिमिता पदानि**[3] में वैय्याकरणों की आगामी परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी का बीजभूत दर्शन आया है वहाँ सर्वत्र प्रतिभा का ही भङ्ग्यतर से वर्णन है। इसीलिए यह समझ लेना आवश्यक ही है कि पुराणकाल में प्रचलित प्रतिभा शब्द और सिद्धान्त वेदों के वाक्तत्त्व, सामतत्त्व और मेधातत्त्व का निष्कृष्ट सार है। रूपान्तर से जैनों, बौद्धों, शैवों, शाक्तों वैष्णवों, वैयाकरणों, नैयायिकों, वैशेषिकों, सांख्यवादियों, योगियों, मीमांसकों, वेदान्तियों और तांत्रिकों ने उसी का यथायोग्य उपयोग अपने-अपने दर्शन को परिनिष्पन्न करने में किया है।

25. शैव कहते हैं कि पूर्वानुभूत ईश्वरात्मकतत्त्व के तत्त्व-शास्त्र, अनुमान एवम् साधना द्वारा वर्तमान में अभिमुख होने पर प्रतिसन्धान के बल से 'वही ईश्वर मैं हूँ' ऐसी प्रत्यभिज्ञा ही लोकोत्तर प्रतिभा की उद्गमस्थली है। इसी का वर्णन **ईश्वर-प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी** में देखिए—**प्रतीपमात्माभिमुख्येन ज्ञानं प्रकाशः प्रत्यभिज्ञा। सा च भातभासमानरूपानुसंधानात्मिका- स एवायं चैत्र** इति प्रतिसन्धानेन अभिमुखीभूते वस्तुनि ज्ञानम्।[15] प्रतिभा की छोटी-मोटी चर्चा तो प्रायः सभी आस्तिक नास्तिक दर्शनों में उपलब्ध हो जाती है किन्तु उसका साङ्गोपाङ्ग स्वरूप-निरूपण तो पातञ्जल-व्याकरण, पातञ्जल-योग, न्यायवैशेषिक एवम् शैवागम में ही हुआ लगता है। मूलतः ये सभी दर्शन केवल शैवी दृष्टि का ही उन्मेष हैं। इनके पाणिनि आदि प्रवर्तकों को प्रायः शैव ही स्वीकार किया जाता है। इन सभी ने मिलकर जो शिव का स्वरूप बनाया उसमें लगता है कि प्रतिभा तत्त्व को ही अमृता चन्द्रकला और तृतीय नेत्र के प्रतीक रूप में समझा दिया गया है। मस्तक में दहकती हुई असामान्य ज्ञानाग्नि का रस की अधिष्ठात्री अमृता चन्द्रकला में विकास अथवा यूं भी कह सकते हैं कि चित् या ज्ञान की आनन्दरूपता या रसरूपता में परिणति ही प्रतिभा का मूल है।

26. शैव और शाक्तगण उसी 'प्रातिभं महः' का ध्यान करते हैं जिससे बड़े-बड़े महाकवियों के काव्यों में अजस्र रसधारा उतर आती है। दार्शनिकों का तर्क ब्रह्मविचार बन उठता है। भक्तों का भाव महाभाव में परिणत हो जाता है। वह तथा-कथित वेदान्तियों की माया के समान विलक्षण और साख्यों की प्रकृति के समान शाश्वत रूप से प्रसवधर्मिणी एवम् पशुपति के अधीन होकर भी उनके इस रूप से भिन्न है क्योंकि वह चिति है, स्वतन्त्रा है और विश्वसिद्धि का हेतु है। वेद में कहा गया था कि "जिस मेधा की देवता और पितर लोग निरन्तर उपासना करते हैं उसी मेधा से हे देव मुझे मेधावी बना दीजिए।" यह कौन सी वैदिक मेधा थी जो प्रत्येक वैदिक मेधा के पीछे काम कर रही थी। क्या 'मिह् सिंचने' धातु के मूल में जो रस चेतन था वही परवर्ती प्रतिभा शब्द की मूल प्रेरणा बना?

27. वैयाकरणों द्वारा, मानव-चेतना में समाए वाक्तत्व के सम्पूर्ण आलोड़न के साथ-साथ जैनों और बौद्धों में भी इस विज्ञानचक्षु की विभिन्न देवियों यानि पद्मावती, तारा या प्रज्ञा-पारमिता के रूप में उपासना होती ही रही है। किन्तु प्रामाण्यवाद के समर्थक आस्तिक दार्शनिकों ने अपनी सभी प्रमाणों के मूल में सर्वातिशायिनी प्रमा का साक्षात्कार किया उसकी निम्नलिखित परिभाषाएँ आलोचन योग्य हैं—

    (1) अविसंवाद्यनुभव इति बौद्धाः।
    (2) अव्यभिचार्यनुभव इति भाट्टदेशीयाः।
    (3) यथार्थानुभवः प्रमाणजन्यं ज्ञानं वेति नैयायिकाः।
    (4) संशय-विपर्यय-विकल्प-स्मृतिरूप-चित्तवृत्तिभिन्ना या चित्तवृत्तिः सेति योगिनः।
    (5) अनधिगततत्त्वबोधः पौरुषेयो व्यवहारहेतुरिति सांख्याः।
    (6) बोधेद्धावृत्तिर्वृत्तीद्धबोधो वा। अथवा वृत्तौ प्रतिबिम्बितं चैतन्यम् अथवा स्मृतिभिन्नत्वे सति अबाधितार्थगोचरज्ञानं वा इति वेदान्तिनः।

28. इन सभी पारिभाषिकों ने इस प्रमा को दो स्तरों पर एक साथ काम करते देखा। जीव के स्तर पर यह जीवाश्रया प्रमा बन गई। वेदान्तियों ने इसे '**अनधिगताबाधितविषयाकारान्तःकरणवृत्तिप्रतिबिम्बिता चित्**' कहा तो ईश्वराश्रया प्रमा को '**ईक्षणापरपर्याय स्रष्टव्यविषयाकार-मायावृत्तिप्रतिबिम्बिता चित्**' कहा गया।

29. हमारे यहाँ के समस्त कवियों और समीक्षा-शास्त्रियों में से अधिकांश काश्मीर शैवों ने समस्त काव्यों और कलाओं में प्रतिभातत्त्व को पहचानते हुए कहा-

"प्रतिभातिशयो यत्र कवितानर्तकी सखः।
रसनारङ्गमासाद्य काव्यं नाटयतु स्फुटम्।
प्रतिभातिशयो नाम भूयसां तपसां फलम्।
तथा तदनुरूपाणां तस्यापि प्रसरो गिराम्।
तस्यापि काव्यरूपत्वमनवद्यं विभूषणम्।[32]

मम्मट एवम् आनन्दवर्धन सरीखे समीक्षकों ने शैवागम के अनुसार केवल जीवाश्रया प्रतिभा का ही आँशिक सा वर्णन कवित्वशक्ति का प्रतीयमान ध्वनि के रूप में किया है।

30. समस्त प्रमाता, प्रमाण-प्रमेय व्यवहार के बाहर भीतर इस संवित् का ही स्फुरण हो रहा है। स्फुरणा या स्फूर्जता इस संवित् का सहजस्वभाव है। "सा स्फुरत्ता महासत्ता अर्थात् सदा सब रूपों में भासित होते रहना तथा भासित और भासमान की अन्विति का भान ही प्रकाश की विमर्श-रूपता है। आगम कहता है कि प्रकाश का अपनी इच्छा या राग से लाल हो उठना ही उसका विमर्श है **लौहित्यमेतस्य विमर्शः**। इसी विमर्शशक्ति के कारण जब नादतत्त्व से लेकर पृथिवीतत्त्व पर्यन्त 36 तत्त्वों सहित जब शिवयोगी मस्तक में समस्त विषयों का युगपत् अनुभव करता है तो वह योगी की सप्रतिभा जाग्रद् अवस्था है—

नादादिपृथिव्यन्तषट्त्रित्तत्वैः सह यदा ललाटस्थः।
सर्वान् विषयाननुभवति तदा सप्रतिभा जाग्रदवस्था॥[39]

ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा के ज्ञानाधिकार में इस प्रतिभा के रूप की और ढंग से व्यापकता बताते हुए कहा गया है कि "विभु की मायाशक्ति द्वारा भिन्न बाहरी और आन्तरिक वस्तु का विश्रान्ति स्थान वही विमर्शरूपा परावाक् चिति, ज्ञान, संकल्प, अध्यवसाय स्मृति और संशय के नाम से कही गई। यह प्रतिभा जो भिन्न-भिन्न पदार्थों के देशकाल परिपाटी रूप क्रम से उपरञ्जित या परिच्छिन्न है, वही पारमार्थिक रूप में, प्रकाशरूपा होने से ही अक्रम, अनन्त, महेश्वर अथवा देशकाल और स्वरूप कृत परिच्छेदों से रहित चित् का रूप कही गई है। भारतीय साहित्यशास्त्र के जिन मनीषियों ने इस प्रतिभा का साक्षात्कार किया उनमें से काश्मीर शैवाचार्य आनन्दवर्धन ने अपने *ध्वन्यालोक* ग्रन्थ के चतुर्थ उद्योत में काव्यकला के विवेचन के सन्दर्भ में यह घोषणा की कि जिस काव्यरचना की पृष्ठभूमि में प्रतिभा का गुण हो उसमें ध्वनि या व्यङ्ग्यार्थ का वह लावण्य स्वयम् ऐसे फूट पड़ता है कि अर्थ-सौन्दर्य का तह दर तह विकास का क्रम रुकने का नाम ही नहीं लेता—

न काव्यार्थ विरामोऽस्ति यदि स्यात्प्रतिभा गुणः।

और फिर इस प्रतिभा के अक्षयकोष की चर्चा करते हुए वहाँ यह भी कहा गया है कि वाल्मीकि की प्रतिभा-प्राप्ति के बाद भी यदि किसी कवि के अर्थों में कहीं प्रतिभा पाई जाती है तो वह सिद्ध करती है कि प्रतिभा अक्षय है, अनन्त है—**तत्तदान्त्यमक्षयम्।** ऐसी प्रतिभा के धनी जो कवि हैं वे स्वप्न में भी कभी दूसरे कवियों की छाया, अर्थ, भाव या पद आदि ग्रहण नहीं करते—

परस्वादानेच्छा विरतमनसो वस्तु सुकवेः।

सरस्वत्यैवैषा घटयति यथेष्टं भगवती॥

भगवती प्रतिभा ही उनके लिए नए से नए अर्थों का उन्मेष करती चली है।

31. अतः भर्तृहरि जैसे वैयाकरणों ने जब यह बात मान ली थी कि आर्ष ज्ञान और आगम का वाक्तत्त्व दोनों परस्पर संपिण्डित हैं—**ऋषीणामपि यद् ज्ञानं तदप्यागमपूर्वकम्,** तो शैवों ने इन दोनों के एक साथ धारणकर्ता शिव की पराशक्ति प्रतिभा में अन्तर्भुक्त करके कहा कि प्रातिभ ज्ञान अनौपदेशिक है। यह सहज है। सीखा नहीं जाता। यह अक्रम है। सर्वविषयक है। परमशिव के चितिशक्ति के प्रथम अवतरण की भूमिका ही प्रतिभा है। वह वाच्य-वाचक-विभाग से हीन पश्यन्ती भूमि उपदेष्टा-उपदेश्य के भेद से रहित है। अनौपदेशिक ज्ञान के मूल में आगम होना सत्य है। क्योंकि परावाक् या आगम ही पश्यन्ती या प्रतिभा का निदान है। उपर्युक्त कविराज गोपीनाथ जी के प्रतिभा-सम्बन्धी दृष्टिकोण को उद्धृत करने के साथ ही शिवयोगी अमृतानंद के इस पद्य के साथ यह स्पष्ट कर लेना होगा कि—

विमर्शरूपिणीशक्तिरस्य विश्वगुरोः सदा।

परिस्फुरति सैकापि नानाभावार्थरूपिणी॥

32. अतः निःसन्देह कुण्डलिनी दर्शन को प्रतिभादर्शन के नाम दिए जा सकते हैं। इस दर्शन के अनुसार तीन वेद, तीन लोक (भूः, भुवः और स्वः), तीन अग्नियां, तीन गुण, तीन काल, तीन खण्ड, इच्छा-ज्ञान-क्रिया का त्रय ये सब एक ही पराशक्ति के त्रिवृत विकास के सूचक प्रमाण हैं। *ऋग्वेद* के *पुरुषसूक्त* में जब यह कहा गया था कि पुरुष के तीन पाद ऊपर हैं[1], तो उसकी इस त्रिपाद् विभूति से वैदिकों का क्या अभिप्राय रहा होगा, यह विचारणीय विषय है। यह तो निश्चित है कि वेदों में किसी एक परमपुरुष का स्तवन अवश्य किया गया है, किन्तु साथ ही उसकी सर्वातिशायिनी महिमा का भी वर्णन है।[2] योगदर्शन में उस ईश्वर-पुरुष की महिमा का अपौरूषेय बोध रूप शास्त्र से ज्ञान होता है।[3] अतः सामान्य रूप से एक अन्योन्याश्रय सम्बन्ध सा दृष्टिगत होता है। वे दोनों पारस्परिक अद्वैतता अथवा अभिन्नता के कारण एकरस या समरस हैं।

33. काश्मीर में कौलों ने अपने कुलाम्नाय के अन्तर्गत *त्रिपुरारहस्य* आदि तंत्रग्रन्थों के अनुसार जो देवीतत्त्व का स्वतंत्र अवलोकन किया उसी की परिणति बाद में पुण्यानन्दनाथ के *कामकलाविलास*, *कौलोपनिषद्*, *शारदातिलक* एवम् साहिब कौल के देवीनाम विलास जैसे शक्ति ग्रन्थों में हुई। अभिप्राय

यह है कि काश्मीर में ही एक साथ वैदिक एकपुरुष वाद तथा एकशक्तिवाद दोनों इस रूप में विकसित हुए कि आगे बढ़ कर वे दोनों ही एक दूसरे से एकमेक हो गए। शक्ति प्रतिभा सिद्धान्त के रूप में शिवप्रिया विमर्श-शक्ति बन गई। इस प्रतिभा के बल पर शिवतत्त्व ने करुणा से जीव की और जीव ने अपनी शिवरूपता की प्रत्यभिज्ञा प्राप्त की। शक्ति ने भी शिव को सौभाग्यरूप में प्राप्त किया और फिर इस विद्या का नाम ही सौभाग्य-विद्या हो गया। *सुभगोदयस्तुति* या *सौभाग्यभास्कर* जैसे भाष्यग्रन्थ उसी का साहित्यिक विश्लेषण करते हैं। अत: प्रत्यभिज्ञा दर्शन का प्राणभूत सिद्धान्त प्रतिभा है जो प्रमा, वाक् एवम् सौन्दर्य-बोध के रूप में दर्शन, व्याकरण और काव्यशास्त्र में ओतप्रोत हो गया है। अत: तीनों जगह फैली प्रतिभा सम्बंधी परिभाषाओं एवम् धारणाओं का अलग से लघु परीक्षण उचित ही होगा।

34. मानव मन, अनादि काल से अपने आसपास के परिवेश में इतनी विभिन्नता लिए है कि विभिन्न वस्तुएँ, विभिन्न पशुपक्षी, विभिन्न पेड़-पौधे ही नहीं, मनुष्य की जाति, एक होने पर भी प्रत्येक मनुष्य दूसरे मनुष्य से भिन्न है, जिसके विषय में कभी आश्चर्यचकित, कभी मूढ़ और कभी जानने की लालसा से वह अभिभूत होता रहा है। वह कौन सी आधारशक्ति है जिसके कारण प्रत्येक सत्ता विशिष्ट नवीनता लिए हुए है और प्रत्येक क्षण नवीन से नवीन सत्ताओं का उन्मेष हो रहा है। इस पर विचार करते हुए भारतीय दर्शनों ने अपनी व्याख्या देने की कोशिश की है। न्याय-वैशेषिक के अनुसार सात तत्त्वों का पारस्परिक संयोजन-वियोजन और ईश्वरेच्छा इसका कारण है। वेदान्तियों के अनुसार माया की आवरण और विक्षेप शक्तियाँ इस नवीनता का कारण हैं। लेकिन शैवों के अनुसार प्रकाश विमर्शमय शिव[6] की प्रतिभा-शक्ति ही इसका कारण है। यह प्रतिभाशक्ति शिव से अभिन्न है।[7] क्योंकि शक्ति और शक्तिमान् का अभेद सम्बन्ध होता है।[8] अब प्रश्न उठता है कि यह प्रतिभा किस प्रकार की शक्ति है। इसका क्या स्वरूप है, इसका क्या प्रयोजन है, इसकी सार्थकता क्या है? इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए प्रतिभा शब्द का शाब्दिक विश्लेषण करना औचित्यपूर्ण होगा। प्रतिभा शब्द "प्रति भा अ क अ टाप्" से मिल कर बना है, जिसका कोशगत अर्थ है प्रज्ञा, दर्शन, दृष्टि, प्रकाश, प्रमा, बुद्धि, मेधा, विशद कल्पना आदि।[9]

35. भट्टतौत प्रतिभा का लक्षण करते हुए कहते हैं कि प्रज्ञा का नवनवीन उन्मेष (स्फुरण) प्रतिभा है।[10] *दिनकरी* में महादेव भट्ट लक्षण करते हुए कहते हैं कि बुद्धि की विशेष स्फुरणा ही प्रतिभा है।[11] *शब्द कौस्तुभ* में लक्षण किया गया है कि वह बुद्धि जो एकदम विषय को ग्रहण कर लेती है, वह प्रतिभा है।[12] लगभग इन्हीं सन्दर्भों में *महाभारत*[13] और *न्यायसिद्धान्त मुक्तावली*[14] में भी शब्द प्रयुक्त हैं। *ध्वन्यालोकलोचन* में कहा गया है कि अपूर्व वस्तु के निर्माण में सक्षम प्रज्ञा को प्रतिभा कहते हैं।[15]

36. मानव समाज के विकास का मूल प्रतिभा है, जो अनादिकाल से लेकर वर्तमान काल तक चली आ रही है और भविष्य में भी मानव और मानव समाज के विकास का आधार रहेगी। साहित्य कला, ज्ञान-विज्ञान, दर्शन सब में प्रतिभा का अपने-अपने ढङ्ग से भिन्न-भिन्न रूपों में प्रयोग किया गया है।[16] ऐसा कहा गया है कि प्रतिभा प्रत्येक व्यक्ति में स्वाभाविक रूप से रहती है।[17] भले ही वह आणवमल,

मायिकमल, कार्ममल आदि मलों, माया के कारण या चित्त-विक्षेष के कारण या तीन गुणों के कारण स्पष्ट रूप से प्रतिभासित न होती हो।

37. प्रतिभा शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग पतञ्जलि ने अपने योगसूत्रों के तीसरे विभूतिपाद में सिद्धियों की प्राप्ति के लिए विकल्प रूप में रखा है।[18] अर्थात् प्रातिभ ज्ञान उत्पन्न होने से भी समस्त ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इस प्रातिभज्ञान से अलौकिक श्रवण, स्पर्श, दर्शन स्वाद, वार्ता एवम घ्राण ये छः सिद्धियाँ प्रकट होती है।[19] इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए तन्त्रालोककार ने भी कहा है कि इस प्रतिभा-विज्ञान से क्या-क्या सिद्ध नहीं हो जाता।[20] यही मत सोमानन्द, कल्याण, भवभूति एवम् परात्रिंशिकाकार का भी है।[21] विज्ञान भिक्षु ने अपने *योगदर्शन* वार्तिक में प्रतिभा को स्वतंत्ररूप से प्राप्त ज्ञान कहा है।[22] *योगसूत्र* पर लिखित *सांख्य-प्रवचन-भाष्य* में कहा गया है कि वह प्रतिभा प्रकाशक होने से सूक्ष्म व्यवहित, विप्रकृष्ट, अतीतानागत वस्तुओं का ज्ञान कराती है।[23] यही बात *पातञ्जल योग रहस्य* में भी कही गई है।[24] योगदर्शन में प्रतिभा से आध्यात्मिक शक्तियों की प्राप्ति बताते हुए उसे विवेक से भिन्न माना गया है।[25] *तन्त्रालोक* में कहा गया है कि प्रतिभा वह महाज्ञान है जिसे शास्त्र और आचार्य की अपेक्षा नहीं है।[26] टीकाकार भी इसी तथ्य का विस्तार करते हुए कहते हैं कि इसके स्वयं-प्रकाश एवं ज्ञान के उदित करने के कारण इसके महत्त्व में शास्त्र और आचार्य अपेक्षित हेतु नहीं है।[27] *तन्त्रालोककार* प्रतिभा-ज्ञान को चिन्तामणि के समकक्ष मानते हैं जिसके चिन्तनमात्र करने से सब अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति होती है।[28] और प्रातिभ ज्ञान को उत्तम कहा गया है।[29] इसी प्रतिभा के कारण देवेश भिन्न-भिन्न क्रियाओं के कर्त्ता बनते हैं।[30] नित्य नवीन से नवीन रचना करने वाली यह प्रतिभा ही है।[31] आचार्य अभिनव की उक्त परिभाषा में रुद्रट से कोई मौलिक अन्तर नहीं दृष्टिगत होता है कि केवल नवनवोन्मेष को नवनवोल्लेख कर दिया गया है।[32]

38. इसी प्रतिभा शक्ति के कारण पशु को पर-प्रकाश की प्राप्ति होती है और सभी चेतनाचेतन पदार्थ शिवमय ही हैं, — ऐसा अनुभव वह प्राप्त करता है।[33] यह प्रातिभ शक्ति प्रति व्यक्ति या जीव में भिन्न-भिन्न (प्रस्फुटित, अप्रस्फुटित, अर्द्धस्फुटित) हो सकती है। यह उसके मलों के आधिक्य और कमी पर निर्भर करता है। लेकिन उपायों द्वारा यह शक्ति वैसे ही प्रत्येक पशु, में प्रस्फुटित हो सकती है जैसे भस्म में से निकला हुआ अंगारा, या फिर मानो प्रातिभ रूप बीज का उपाय रूप पानी, मिट्टी आदि उपकरणों से पूर्ण वृक्ष रूप में प्रस्फुटित होना।[34]

39. प्रतिभा से युक्त पुरुष शक्तिपात द्वारा मायीय मलों का नाश कर देता है।[35] व्यष्टि समष्टि के भेद से प्रतिभा के दो भेद हो सकते हैं। व्यष्टि रूप में यह माणिक्य की तरह है जो केवल आसपास की वस्तुओं को प्रकाशित करता है और समष्टि रूप में यह सूर्य की तरह है जो सारे विश्व को प्रकाशित करता है।[36]

40. धार्मिक पक्ष में प्रतिभा को स्वातन्त्र्यशक्ति माना गया है। भिन्न प्रयोजनों के लिए कर्ममार्ग में जिन 12 देवियों की उपासना की जाती है, प्रतिभा उनमें से एक है।[37] नैतिकता के सन्दर्भ में प्रतिभा ही लोकव्यवहार में प्रमाण बनती है क्योंकि मानवीय क्रियाकलापों के औचित्य को प्रतिभा ही सिद्ध करती है।[38]

41. *वाक्यपदीय* में प्रतिभा के 6 प्रभेद माने गए हैं। जन्मजात प्रतिभा, अभ्यास जन्य, साहित्यिक अध्ययन-जन्य, यौगिक प्रतिभा-जन्य और भूतकालिक कर्मों से उत्पन्न अदृष्ट प्रतिभा।[39] आध्यात्मिकता के सम्बन्ध में तथा प्रतिभा के बारे में भर्तृहरि का मत है कि यह सारा स्थूल जगत् प्रतिभा की ही रचना है।[40] हेलाराज ने *वाक्यपदीय की टीका* के आरम्भ में ही प्रतिभा को परमानन्द माना है और परम सत् माना है।[41]
42. "कवि की काव्य रचना का आधार प्रतिभा ही है" ऐसा भामह का कथन है।[42] वामन के कथनानुसार प्रतिभा काव्य का बीज है।[43] दण्डी प्रतिभा को काव्य का उद्भव स्थल मानते हैं। नैसर्गिक मानते हैं।[44] आनन्दवर्धन के मत में भी प्रतिभा को कवि की काव्य रचना में संलग्न शक्ति माना गया है जो कवि को महाकवि बनाती है।[45]
43. *कौलोपनिषद्* में उल्लिखित है कि इसके प्रकाशित होने से ही यह सब प्रकाशित होता है।[46] तन्त्रालोक में प्रतिभा और शाम्भवोपाय में ऐक्य माना गया है।[47] इसी प्रतिभा को, सारे विश्व के प्रकाशित होने का कारण तथा महेश्वर से उसका ऐक्य भी बताया गया है।[48] उत्पलाचार्य भी *भास्करी* में प्रतिभा और महेश्वर में ऐक्य का प्रतिपादन करते हैं।[49] इसी मत का प्रतिपादन भट्टचन्द्रानन ने किया है।[50]
44. अन्यत्र अभिनवगुप्त प्रतिभा और शक्ति को भी एक मानते हैं।[51] महिमभट्ट अपने ग्रन्थ '*तत्त्वोक्तिकोश*' में प्रतिभा को महेश्वर का तृतीय नेत्र मानते हैं जो कि ज्ञान-शक्ति है और जिसमें तीनों लोकों को एक साथ धारण कर सकने की क्षमता है।[52] महेश्वर की अपनी इसी स्वातन्त्र्य शक्ति के कारण ही यह सब शरीर, वायु इत्यादि प्रस्फुटित होते हैं।[53] यही प्रतिभा-शक्ति जीवन को मलों से निवृत कर शिव रूप में स्थापित कर देती है।[54]
45. कहना न होगा कि उक्त सभी प्रतिभा-सम्बन्धी परिभाषाएँ एक दूसरे से मूलत: अलग न होते हुए भी प्रतिभा के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन अवश्य करती हैं। विशेषकर तन्त्रालोक में आचार्य अभिनव का दृष्टिकोण तो प्रतिभा-तत्त्व की क्षमताओं को प्रस्तुत करने में नितान्त सफल रहा है।
46. शैवों और शाक्तों द्वारा इस सिद्धान्त पर बल देने से पूर्व कई लोग तो प्रतिभा को कोई प्रमाण ही मानने के पक्ष में नहीं थे। कुछ लोग प्रतिभा की प्रामाणिकता का खण्डन न भी करते तो भी उसे शब्द प्रमाण में अन्तर्भुक्त कर देना चाहते थे।[55] कुछ लोग उसे केवल वाक्यार्थ मानकर ही चलता करने के पक्ष में थे।[56]
47. यह सत्य है कि उपर्युक्त शब्दार्थ-प्रतिभावादियों या वाक्यार्थ-प्रतिभावादियों के सम्प्रदायों ने प्रतिभा का जो नितान्त लोकसामान्य रूप प्रस्तुत किया था उसमें से कोई गहरी चीज़ नहीं निकल सकती थी। वह एकमात्र मनुष्यमात्र से पशुस्तर तक फैली हुई व्यावहारिकता की प्रकाशन-क्षमता-मात्र थी। इस गौणता से मुक्त करके योगियों और शैवों ने इसे शिवपद पर अभिषिक्त किया तथा उसकी सामान्य लौकिकतामात्र को विलक्षण अलौकिकत्त्व प्रदान कर सम्पूर्णता से मण्डित कर दिया। वह दिव्यलोकों से अदिव्यलोकों तक में दिव्य-सञ्चार करने लगी।

सन्दर्भ

1. त्रिपाद् ऊर्ध्वम् उदैत पुरुषः। *ऋग्वेद*, 10-90-4
2. तपसस्तन्महिमाऽजायतैकम्। *ऋग्वेद*, *नासदीय सूक्त*
3. "योऽसौ प्रकृष्टसत्वोपादानादीश्वरस्य शाश्वतिक उत्कर्षः — तस्य शास्त्रं निमित्तम्। शास्त्रं प्रकृष्टसत्वनिमित्तम्। एतयोः शास्त्रोत्कर्षयोरीश्वरसत्वे वर्तमानयोरनादिः सम्बन्धः। एतस्मादेतद् भवति सदैवेश्वरः। तच्च तस्यैश्वर्यं साम्यातिशय विनिर्मुक्तम्।" *योगसूत्र*, 1-24, व्यास भाष्य।
4. चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिःहेतुः। *प्रत्यभिज्ञाहृदय*, सूत्र-1
5. *ब्रह्मसूत्र* 1-1, 1
6. 'प्रकाशविमर्शमयः शिवः।' *कामकलाविलास*, 1
7. "शिवः शक्त्यायुक्तो यदि भवति तदा शक्तः प्रभवितुम्।" *सौन्दर्यलहरी*, श्लोक-1
8. शक्तिः शक्तिमतोरभेदः। वही, *सौभाग्यवर्धिनी*, पृ. 3
9. (स्त्री) प्रतिभाति, शोभते इति। प्रति भा क टाप् बुद्धिः प्रत्युत्पन्नमतित्त्वं, नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा। *हलायुधकोशः*
10. "प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।" *भारतीय साहित्य शास्त्र*, पृ. 435
11. स्फूर्त्याख्यो बुद्धिविशेषः। *दिनकरी*, 237
12. झटिति विषयग्राहिणी बुद्धिः। *शब्द-कौस्तुभ*
13. प्रतिभा त्वस्ति मे काचित् ता ब्रूयामनुमानतः। 12-259-1
14. "यया समाप्तिस्तु बुद्धिप्रतिभादिकारणकलापात्।" पृ. 369
15. "प्रतिभा अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा प्रज्ञा।" 1-6
16. "The pratibha is used in mystical, methaphysical, religious, aesthetical and Psychological context in different meaning but everyone of them has an element in common with rest." *Abhinavagupta*, by K.C. Pandey. Page 693
17. यन्मूलं शासनं तेन न रिक्तः कोऽपि जन्तुकः। व्युत्पत्तेर्हि प्रतिभात्मकमेव वस्तुमूलम् न च तेन प्रतिभात्मना वस्तुना तिर्यक्प्रायोऽपि कश्चिद् जन्तु स्वोचितव्यापारनैपुण्यान्यथा-नुपपत्त्यतिरिक्तः अतएव "व्यवहाराः प्रतीयन्ते तिरश्चामपि यद्वशात्।" *तन्त्रालोक*, 13-135
18. *योगसूत्रम्* 3-34
19. वही, पृ. 3-37
20. इत्थं प्रातिभविज्ञानं किं किं कस्य न साधयेत्।
    यत्प्रातिभाद्वा सर्वं चेत्यूचे शेषमहामुनिः॥ *तन्त्रालोक*, 13-146
21. गुरुवस्तत्त्वदर्शिनः। श्री सोमानन्दकल्याणभवभूतिपुरोगमाः।
    तथा हि त्रींशिकाशास्त्रविवृत्तो तेऽभ्यधुर्बुधाः। वही, 13-149, 150
22. प्रातिभं स्वप्रतिबोधं अनौपदेशिकम् ज्ञानम्। *योगसूत्रम्*, पृ, 348
23. प्रतिभातः सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टातीतानागतज्ञानम्। वही, पृ. 3-36 पर *सांख्य प्रवचन भाष्य*
24. क) तथाह प्रतिभातः सूक्ष्मादि पश्चसाक्षात्कारात्मकम् मानसम्।" *पातञ्जल योग रहस्य*, 3-36
    ख) प्रतिभा उपदेशादि नैरपेक्ष्येण सूक्ष्मादीनाम् मानसम् यदर्थज्ञानम् तत्सामर्थ्यम्।" वही।

25. प्रातिभाद्वा सर्वम्। प्रातिभं नाम तारकं, तद्विवेकजस्य ज्ञानस्य पूर्वरूपं यथोदये प्रभा भास्करस्य। तेन वा सर्वमेव जानाति योगी प्रातिभस्य ज्ञानस्योत्पत्ताविति। *योगसूत्रम्*, 3-33
26. तत्प्रातिभं महाज्ञानं शास्त्राचार्यनपेक्षि यत्। *तन्त्रालोकम्*, 13-132
27. यतोऽस्य स्वप्रतिभात एव एवं ज्ञानमुदियादत एव अस्य महत्वे शास्त्राचार्यमनपेक्षित्त्वं हेतुः। वही, (टीका)
28. सांसिद्धिकं यद्विज्ञानं तच्चिन्तारत्नमुच्यते। तदभावे तदर्थं तदाहृतं ज्ञानमादृतम्॥ वही, 13-150, 151
29. ---- प्रातिभं ज्ञानमुत्तमम्॥ वही, 13-166
30. स्वयं बध्नाति देवेशः स्वयं चैव विमुञ्चति।
स्वयंभोक्ता स्वयं ज्ञाता स्वयं चैवोपलक्षयेत्॥ वही, 13-123, 124
31. अतोभेदसमुल्लासकलां प्राथमिकीं बुधाः।
चिन्वति प्रतिभां देवीं सर्वज्ञत्वादिसिद्धये। वही, 10-240
32. अतएव नवनवोल्लेखशालित्वं प्रतिभेत्युक्तम्। वही, 10-211 (टीका)
33. सर्वभावविवेकात्तु सर्वभावपराङ्मुखः।
क्रीडासु सुविरक्तात्मा शिवभावैकभावितः।
माहात्म्यमेतत्सुश्रोणि प्रातिभस्य विधीयते।
स्वच्छायादर्शवत्पश्येद्बहिरन्तर्गतं शिवम्। वही, 13-114, 115
34. भस्माच्छन्नाग्नि वत्स्फौटयं प्रातिभे गौरवागमात्।
बीजं कालोप्तसंसिक्तं यथा वर्द्धेत तत्तथा।
योगयागजपैरूपैः गुरुणा प्रातिभं स्फुटेत्। वही, 13-11, 176
35. यदा प्रतिभया युक्तस्तदा मुक्तश्च मोचयेत। परशक्तिनिपातेनध्वस्तमायामलः पुमान्। वही, 13-105
36. स्वमुक्तिमात्रे कस्यापि यावद्विश्वविवेचने। प्रतिभोदेति खद्योतरत्नतारेन्दु सूर्यवत्। वही, 13-101
37. एकस्य संविन्नाथस्य ह्यान्तरी प्रतिभा तनुः। सौम्यं वान्यन्मितं संविदूर्मिचक्रमुपास्यते। वही, 1-157, 158
प्रमाणत्वेन तां लोकः सर्वः सुमनुपश्यति।समारम्भाः प्रतायन्ते तिरश्चामपि तद्वशात्। *वाक्यपदीय*, 2-147
39. स्वभावचरणाभ्यासयोगादृष्टोपपादिता। विशिष्टोपहिता चेति प्रतिभां षड्विधां विदुः॥ वही, 2-152
40. इदानीं शब्दस्यैव जगन्मूलत्वं प्रपञ्चयति।
शब्देष्वेवाश्रिता शक्तिर्विश्वस्यास्य निबन्धनो।
यन्नेत्रः प्रतिभात्मायं भेदरूपः प्रतीयते। वही, 1-118
41. धामानन्दसुधामयो तु परसत्तत्प्रातिभं संस्तुमः। वही, (टीका)
42. काव्यं तु जीयते जातु कस्यचित् प्रतिभावतः। *काव्यालङ्कार*,
43. कवित्वबीजं प्रतिभानम्। वही, 1.3.16
44. नैसर्गिकी वा प्रतिभा श्रुतञ्च बहुनिर्म्मलम्।
अमन्दश्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसम्पदः॥ *काव्यादर्श*, 95
45. सरस्वतीस्वादु तदर्थवस्तु निःस्यन्दमाना महतां कवीनाम्।
अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्तं प्रतिभाविशेषम्।। *ध्वन्यालोक*, 1-6
46. तमेव भान्तमुनभाति सर्वम्। तस्य भासा सर्वमिदं विभाति। *कौलोपनिषद्* 5.15 में *श्वेताश्वतरोपनिषद्* 6-14
47. शाम्भवे प्रतिभात्मनि। *तन्त्रालोक* 13 पृ., 100

48. "या प्रतिभा" इति उपक्रम सेति वक्तव्ये पुंनिर्देशस्य क आशय इति। बाह्याभास इति चित्तत्वस्य या आन्तरक्रमाभासता सा लोकस्य मायाशक्तिविमोहबलात् न सिद्धिरिति विधीयते। सिद्धं क्रमिकं बाह्यावभासनमद्य "या" इत्यनेन। न च तावन्मात्रतैव विधीयते येन सेति भवेत्। किन्तु "प्रमाता महेश्वर: सा प्रतिभा" इति प्रमातृत्वमाहेश्वर्याभ्यामुप लब्धपरिपोषा, तत एव उपचयबलादेव उचित: पुंस्त्वनिर्देश:। *ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्ति विमर्शिनी*, 1-7-1 भाग-2, पृ. 340
49. या चैषा प्रतिभा तत्तपदार्थक्रमरूषिता। अक्रमानन्त चिद्रूप: प्रमाता स महेश्वर:॥ *ईश्वरप्रत्यभिज्ञा* 1-7-1
50. पश्यको रूपमालेखाद् भाते भानानुषङ्गी यत्। प्रतीपभानं प्रतिभा भावानामात्मसंश्रया॥
— *ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी*, 1-7-1 टीका, पृ. 339
51. अव्युत्पत्तिकृतो दोष: शक्त्या संव्रियते कवे:। यस्त्वशक्तिकृतस्तस्य झटित्येवावभासते॥ शक्ति: प्रतिभानम्।
— *भारतीय साहित्यशास्त्र*, पृ. 306
52. रसानुगुणशब्दार्थचिन्तास्तिमिचेतस:। क्षणं स्वरूपस्पर्शोत्था प्रज्ञैव प्रतिभाकवे:॥ सा हि चक्षुर्भगवतस्तृतीयमिति गीयते। येन साक्षात्करोत्येष भावाँस्त्रैलोक्यवर्तिन:। इत्यादि प्रतिभातत्त्वभस्माभिरुपपादितम्। शास्त्रे तत्त्वोक्तिकोशाख्य इति नेह प्रपञ्चितम्"॥ *व्यक्तिविवेक*, पृ. 390, 391
53. तदैवं व्यवहारेऽपि प्रभुर्देहादिमाविशन्। भान्तमेवान्तरर्थोघमिच्छया भासयेद् बहि:॥ यत् पूर्वं दर्शितं देहे बुद्धौ इत्यादि तत् एवम् उपपद्यते, कथम्। यदि व्यवहारे मायापदे देहप्राणादिमपि प्रमुख प्रकाश—परमार्थ इच्छाय मायाशक्तिरूपया, आविशन् देहप्राणादि प्राधान्येन स्वरूपं प्रदर्शयन् अन्त: संविन्मात्रे भ्रान्तम् अहमित्येवं रूपं अर्थौघम्, इच्छयैव बहि: इदमिति भासयति तत एतदुपपद्यते। *भास्करी खण्ड* 1-329
54. *तन्त्रालोक*, 13-186, 187
55. क) प्रतिभा खलु विज्ञानं तच्च शब्देन जन्यते। न तु शब्दस्य विषय: रूपधीरिव चक्षुष:॥
ख) प्रतिभावादिन: ये स्यु: वार्ताक्षौदुम्बरायणा:। प्रतिभागोचर:शब्दस्तदर्थश्चेति मन्यताम्।
— *मान मेयरहस्यश्लोकवार्तिक*, पृ. 575
56. "तत्र चाखण्डपक्षे तु लक्षणेष्वपि च त्रिषु। प्रतिभा वाक्यार्थ इति तत्स्वरूपं निशाम्यताम्॥
विच्छेदग्रहणेऽर्थानां प्रतिभान्यैव जायते। वाक्यार्थ इति तामाहु: पदार्थेरूपापादिताम्।
उपश्लेषमिवार्थमाकरोत्यविचारिता॥ सार्वरुप्यमिवापन्ना विषयत्वेन वर्तते।
प्रमाणत्वेन तां लोकस्सर्व: समुपगच्छति। व्यवहारा: प्रवर्तन्ते तिरश्चामपि तद्वशात्।
स्वरवृत्तिं विकुरूते मधौ पुस्कोकिल: कथम्॥ जन्त्वादय: कुलायादे: करणे शिक्षिता: कथम्।
आहारप्रीतिविद्वेष प्लवनादि क्रियासु क:। जात्यन्वय प्रसिद्धासु प्रयोक्ता मृगपक्षिणाम्॥ वही, पाद टिप्पणी 49 वही।

संस्कृत विभाग, सनातन धर्म कालेज (लाहौर),
अम्बाला छावनी, हरियाणा।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि में कुण्डलिनी: अवचेतन शक्ति सामर्थ्य

डॉ. श्रीगोपाल काबरा

क्या आप जानते हैं-

— कि हमारे मनीषियों की कुण्डलिनी की अवधारणा का आधार क्या था? उसकी शारीरिक परिकल्पना क्या थी?

— कि आधार था आत्म अध्ययन, चिन्तन, तत्त्व ज्ञान, प्रज्ञा और दर्शन? अवधारणा थी अवचेतन में सुषुप्त आंतरिक ऊर्जाशक्ति की? असीमित शक्ति जिसे चिन्तन, मनन और योग साधना से जाग्रत् किया जा सकता है? कुण्डलिनी जाग्रत् होने पर व्यक्ति सर्वशक्तिमान हो जाता है? उसे अलौकिक देवीय शक्ति प्राप्त हो जाती है?

— कि इस सुप्त शक्ति की परिकल्पना थी, मेरु रज्जु को घेरे कुण्डली मारे एक सांप की? केन्द्र में सुषुम्ना और दांये बायें इडा और पिंगला नाड़ियों की? जननांगों से मस्तिष्क तक सात चक्रों की? हर चक्र में विशिष्ट भाव शक्ति की? भाव जो जाग्रत् होने पर हर ऊपरी चक्र में परिष्कृत होते जाते हैं? श्रेष्ठ चक्र के जाग्रत् होने पर ये भाव दैवीय शक्ति का रूप ले लते हैं?

— कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसके समकक्ष अवधारणा और परिकल्पना क्या है? उसका आधार क्या है?

— कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में शरीर में अवचेतन प्रक्रियाओं के संचालन की अवधारणा ***ऑटोनोमिक नर्वस सिस्टम*** की है? मेरुरज्जु *(स्पाइनल कॉर्ड)*, *मेडुला*, *पोन्स*, *मिड ब्रेन* में स्थित ***रेटिक्यूलर फोरमेशन*** और चेतन और अवचेतन मस्तिष्क के संधिस्थल पर स्थित ***लिम्बिक सिस्टम*** की

है? लिम्बक सिस्टम जो भाव और यौन मस्तिष्क के रूप में *हाइपोथेलामस* के माध्यम से *ओटोनोमिक नर्वस सिस्टम* और अंतःस्रावी *(एन्डोक्राइन)* ग्रन्थियों का संचालन करता है? लिम्बिक सिस्टम जो चेतन और अवचेतन मस्तिष्क के बीच मध्यस्थता करता है, एक दूसरे के बीच सूचना सेतु का कार्य करता है और एक दूसरे को जाग्रत् करने. शमन या उद्वेलित करने की क्षमता रखता है?

— कि परिकल्पना में कुण्डलिनी के कुण्डली-आकार सर्प के समकक्ष आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में मेरुदण्ड को घेरे सिम्पेथेटिक चेन और तंत्रिकाओं का जाल है? नाडियों के समकक्ष हैं रेटिक्यूलर फॉर्मेशन के तंत्रिकाओं के पांच कॉलम (स्तंभ)? और कुण्डलिनी के 7 चक्रों की परिकल्पना के समकक्ष हैं मेडुला, पोन्स, मिडब्रेन और लिम्बिक सिस्टम के तंत्रिका चक्र? लिम्बिक लोब/सिस्टम की सरंचना तो है ही चक्रों के समूह की? कुण्डलीआकार सर्पों के समूह की?

— कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में परिकल्पना का आधार है भौतिक व प्रायोगिक सत्यापन? आधुनिक विज्ञान की उन्नत तकनीकों से तंत्र कोशिकाओं का सत्यापन? उनकी तंत्रिकाओं का सत्यापन? उनके कार्य का सत्यापन? उनके द्वारा स्रावित न्यूरोट्रांसमीटर्स रसायनों का सत्यापन? और उनके प्रभाव का सत्यापन?

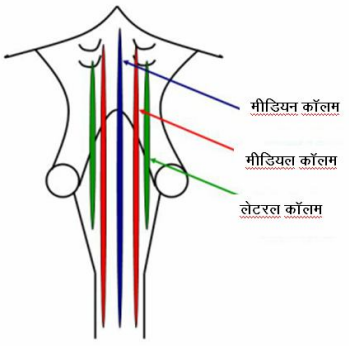

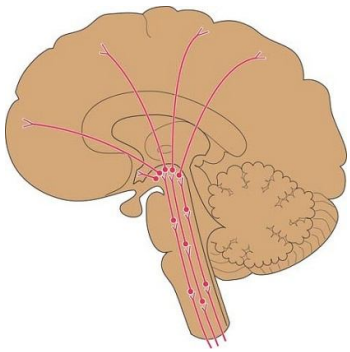

— कि कुण्डलिनी में हर चक्र में निहित विशिष्ट भाव जाग्रत् करने की अवधारणा के समकक्ष आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में पांच प्रमुख न्यूरोट्रांसमीटर स्रावित करने वाली तंत्रिका कोशिकाओं के समूह और चक्रों का सत्यापन किया गया है?

— कि कुण्डलिनी की अवधारणा में 7 चक्रों में निहित बताये गए भाव हैं 1. **मूलाधार चक्र** में वीरता, निर्भीकता और आनन्द का भाव 2, **स्वाधिष्ठान चक्र** जाग्रत् होने पर क्रूरता, गर्व, आलस्य, प्रमाद, अवज्ञा, अविश्वास आदि अवगुणों का नाश 3. **मणिपूर चक्र** के सक्रिय होने से तृष्णा, ईर्ष्या, चुगली, लज्जा, भय, घृणा, मोह आदि दूर हो जाते हैं, 4. **अनाहत चक्र** सक्रिय होने पर लिप्सा, कपट, हिंसा, कुतर्क, चिंता, मोह, दंभ, अविवेक, और अहंकार समाप्त हो जाते है, प्रेम और संवेदना के भाव जाग्रत् हो जाते हैं 5. **विशुद्ध चक्र** के जाग्रत् होने पर भूख, प्यास और मौसम के प्रभाव को रोका जा सकता है, 6. **आज्ञा चक्र** के जागरण से सभी शक्तियाँ जाग पड़ती हैं और व्यक्ति सिद्ध पुरुष बन जाता है और 7. **सहस्रार चक्र** शरीर में अनेक महत्वपूर्ण विद्युतीय और जैवीय विद्युतीय संग्रह कर मोक्ष प्राप्ति का द्वार बन जाता है?

— कि आधुनिक चिकित्सा में तंत्रिका कोशिकाओं और उनके तंत्र जाल का विधिवत् सत्यापन, विश्लेषण, उनके विशिष्ट कार्य का आकलन और कार्य संचालन के लिए कोशिका समूह द्वारा स्रावित विभिन्न न्यूरोट्रांसमीटर रसायन के आधार पर न्यूरोट्रांसमीटर संचालित चक्रों को चिह्नित किया गया है?

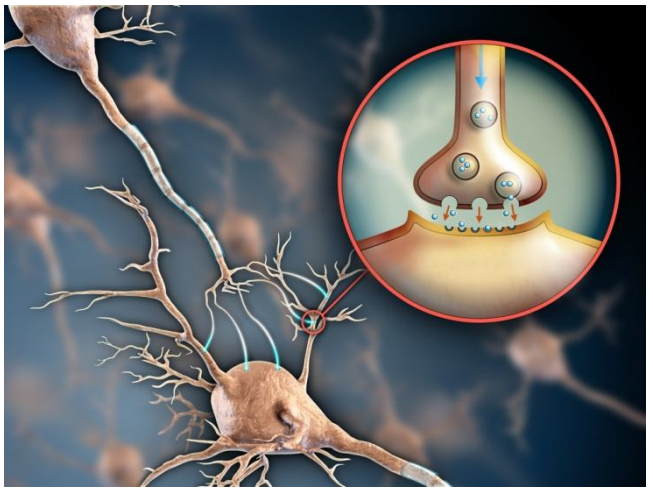

— कि न्यूरोट्रांसमीटर स्राव एवं संचालन अनुरूप 1. कोलिनर्जिक (एसीटाइल कोलिन स्रावित करने वाले), 2. एड्रीनर्जिक (एड्रीनलीन, नोरएड्रीनलिन स्रावित/संचालित), 3. डोपामिनर्जिक (डोपामिन स्रावित), 4. सेरिटोनर्जिक (सेरीटोनिन स्रावित), 5. हिस्टामिनर्जिक (हिस्टामिन स्रावित), 6. गाबामिनर्जिक (गाबा अमाइनो ब्यूटरिक एसिड स्रावित) नामक प्रमुख तंत्रिका चक्र चिह्नित किए गये हैं? हर तंत्रिका चक्र की विशिष्ट कार्य क्षमता, उनके मनोभाव उद्वेलन की क्षमता को प्रयोगों द्वारा प्रमाणित किया गया है? ये न्यूरोट्रांसमीटर्स आज बतौर औषध उपयोग में लिए जा रहे हैं? उनके अत्यधिक स्राव के दुष्प्रभावों के शमन के लिए शामक औषधियाँ उपलब्ध हैं?

— कि सुख, दु:ख, आनन्द, भय, क्रोध, लज्जा, चिंता, अवसाद, मोह, ममता आदि ही नहीं चेतना जगाने और चैतन्य रखने के न्यूरोट्रांसमीटर रसायन भी चिह्नित किए गये हैं? चिह्नित हर न्यूरोट्रांसमीटर विशिष्ट कार्य संचालन व भाव जाग्रत् व उद्वेलित करता है? सोये हुए को जाग्रत् विशिष्ट न्यूरोट्रांसमीटर ही करते हैं? चैतन्यता, एकाग्रता, कुशाग्रता का आधार न्यूरोट्रांसमीटर्स ही होते हैं?

— कि कुण्डलिनी की शास्त्रीय अवधारणा और उसकी संरचना की परिकल्पना में चक्रों, नाड़ियों की अवधारणा को रेटीक्यूलर फोर्मेशन की प्रामाणिक संरचना से बल मिलता है? लेकिन कुण्डलिनी की अवधारणा की समग्रता के लिए ओटोनोमिक नर्वस सिस्टम, हाइपोथेलामस-पिट्यूटरी-एन्डोक्राइन सिस्टम और लिम्बिक सिस्टम भी अहम हैं? अवधारणा के अनेक आधार प्रामाणिक तथ्यों पर खरे नहीं बैठते?

रेटीक्यूलर फॉर्मेशनः अतःपुर की अन्तर कथा

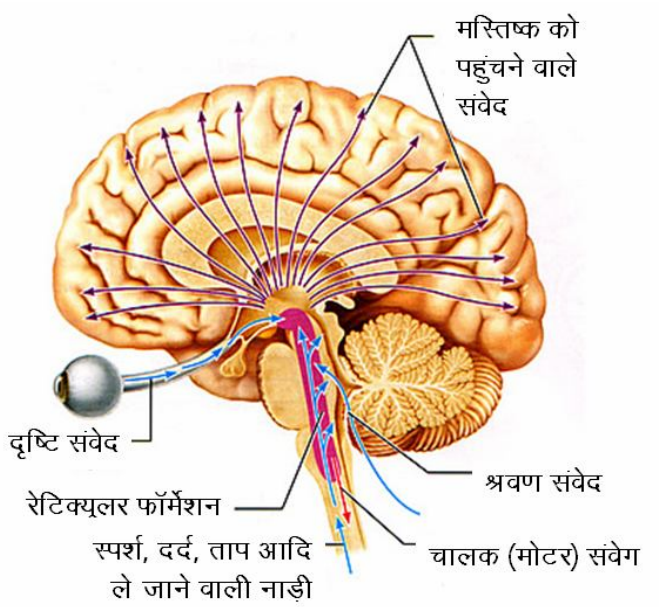

क्या आप जानते हैं—

— कि केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र (सेंट्रल नर्वस सिस्टम) में मेरुरज्जु (स्पाइनल कॉर्ड) और मेरुदंड (ब्रेन स्टेम) में स्थित कोशिकाओं और तंत्रिकाओं (नर्व फाइबर्स) के जाल को रेटीक्यूलर फार्मेशन कहते हैं? रेटीक्यूलर, माने जाल नुमा, तंत्रिका तंत्र का जाल नुमा भाग, रेटीक्यूलर फार्मेशन?

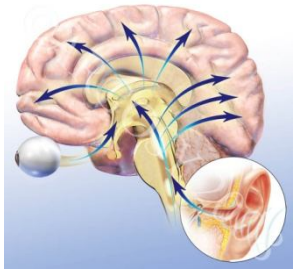

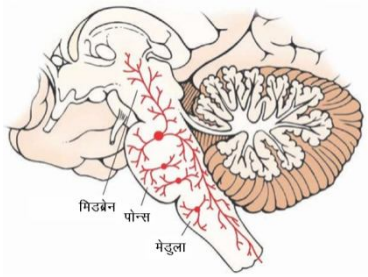

— कि रेटीक्यूलर फार्मेशन की जाल नुमा संरचना बड़ी विलक्षण होती है? तंत्रिका तंत्र में इसकी स्थिति भी बड़ी विलक्षण होती है? यह शरीर की सभी संवेदना (संशेसन्स) लाने वाली नाड़ियां, यथा दर्द, स्पर्श, ताप, दबाव, श्रवण, स्वाद, दृष्टि, गंध, संतुलन व अन्य, से घिरा होता है, और स्वयं सभी संवेग वाहक नाड़ियाँ जो मस्तिष्क से संवेग (मोटर इम्पल्स) ले जाती है, को घेरे होता है? अर्थात यह संवेदों और संवेगों के बीच में स्थित होता है? मस्तिष्क को आने वाली और मस्तिष्क से जाने वाली सूचनाओं के बीच? चालक (मोटर) और संवेदक (सेन्शरी) आवेगों के बीच?

— कि बाहर से आने वाली हर संवेद सूचना को इस जाल से छन कर जाना होता है? बेकार और निरर्थक सूचना को रेटीक्यूलर फार्मेशन छान कर यहीं रोक देता है? आने वाले संवेदों के लिए यह एयरपोर्ट पर स्थित कस्टम जैसा कार्य करता है? और मस्तिष्क से जाने वाले संवेगों के लिए रेटीक्यूलर फार्मेशन इमिग्रेशन का काम करता है?

— कि वैसे तो मेरुरज्जु और मेरुदंड में स्थित रेटीक्यूलर फार्मेशन के बांये और दांये पृथक्-पृथक् भाग होते हैं, लेकिन हर स्तर पर ये भाग आपस में जुड़े होते हैं और आने और जाने वाली सूचनाओं को साझा करते हैं?

— कि रेटीक्यूलर फार्मेशन **बहुकोशकीय** तंत्रिकाओं का जाल होता है? **बहुस्तरीय**—नीचे से ऊपर जाती कोशिकाएँ? उत्तरोत्तर साइनेप्स द्वारा जुड़ी काशिकाएँ? जैसे रिले रेस के खिलाड़ी? शरीर के निचले भाग से आई सूचनाओं को ऊपरी कोशिकाओं को भेजता और ऊपर से मिलती सूचनाओं को नीचे भेजता, बटोरता, साझा करता, विलक्षण तंत्रिका तंत्र?

— कि मेरुरज्जु में रेटीक्यूलर फार्मेशन नीचे से ऊपर जाते, **द्विपक्षीय**—दांये बांये तंत्रिकाओं से जुड़े, कोशिकाओं का सर्पिल कुण्डलीकार जाल होता है?

— कि मेरुदंड के मेडुला, पोन्स और मिडब्रेन में रेटीक्यूलर फार्मेशन की कोशिकाओं और तंत्रिकाओं के चक्र होते हैं? हर चक्र के अपने विशिष्ट सूचना सूत्र होते है? उसी अनुरूप उनके विशिष्ट कार्य और प्रभाव होते हैं? हर चक्र का अपना विशिष्ट संवेग वाहक न्यूरो रसायन — न्यूरोट्रांसमीटर — होता है जिससे उस चक्र की कोशिकाएँ आपस में संवाद करती है? न्यूरोट्रांसमीटर चक्र कोशिकाओं की मातृभाषा होती है? हर कुछ मील पर जैसे बोली बदलती है वैसे ही ये संवेग वाहक न्यूरोट्रांसमीटर?

— कि रेटीक्यूलर फार्मेशन का मिडब्रेन में स्थित शीर्षस्थ चक्र अपने विशिष्ट न्यूरोट्रांसमीटर द्वारा नींद से जगाने का, जाग्रत् करने का (एराउजल), का क्रम करता है? चेतना के स्तर, चेतन्नता और एकाग्रता का नियंत्रक यही चक्र होता है? सोने-जागने के दैनिक चक्र को निर्धारित करने वाली घड़ी यहीं होती है?

— कि पोन्स में स्थित चक्र, स्वतःस्फूर्त भाव अभिव्यक्ति के लिए आँख और चेहरे की मांसपेशियों का नियत्रंण करता है? साथ ही अवचेतन में होने वाली ऑटोनोमिक स्वतःस्फूर्त क्रियाओं का नियंत्रण भी यही चक्र करता है? भाव भंगिमा के लिए शरीर की अन्य मांसपेशियों का नियत्रंण भी इसी चक्र से होता है?

— कि मेडुला में स्थित रेटीक्यूलर फार्मेशन में श्वास, हृदय, रक्तचाप नियंत्रक केन्द्र (वाइटल सेन्टर्स) होते हैं? इनके नष्ट होने से काम करना बंद होने पर ब्रेन स्टेम डेथ होती है? तुरन्त सी पी आर कर हृदय को गतिमान् कर अगर वेन्टीलेटर न लगाया जाए जो व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है? ब्रेन स्टेम डेड व्यक्ति के हृदय और श्वास को जिन कृत्रिम साधन और उपकरणो से चालू रखा जाता है उन्हे लाइफ सपोर्ट कहते हैं?

— मेरुरज्जु में स्थित सर्पिल चक्र पूरे शरीर से संवाद साधता है? आने वाले संवेदों का नियंत्रण करता है? संवेदों के प्रवेश द्वारों का नियंत्रण करता है? इन्ही प्रवेश द्वारों के नियत्रण को ***सेन्सरी गेट कंट्रोल मेकेनिजम*** कहते है? निरर्थक संवेदों का प्रवेश ही रोक दिया जाता है, विशेष कर दर्द संवेदों का? सर्पिल चक्र का ऊपरी भाग, छलनी (फिल्टर) का काम करता है? निद्रा से पहले और निद्रा अवस्था में सभी संवेदों पर पूर्ण रोक लग जाती है? जाग्रत् करने के लिए गेट खोल दिए जाते है, फिल्टर हटा लिया जाता है? यह सब न्यूरोट्रांसमीटर्स के माध्यम से होता है?

— कि ऊपर से आने वाले संवेगों का संतुलन, समन्वय व नियंत्रण मेरुरज्जू का सर्पिल चक्र ही करता है? मांशपेशियों को इच्छा अनुरूप उद्वेलित करने के संवेगों, प्रयोजन सिद्धि के लिए उनके क्रमबद्ध कार्य करने के संवेगों, मांसपेशियों के आवश्यकता अनुरूप शक्ति प्रयोग के संवेगों का समन्वय रेटीक्यूलर सिस्टम ही करता है? मांसपेशियों के क्रियाशील होने के लिए तत्पर करने का कार्य भी यही करता है?

— कि रेटीक्यूलर फार्मेशन का शीर्षस्थ भाग लिम्बिक सिस्टम-हाइपोथेलेमस-पीयूष ग्रंथी के सम्पर्क से यौन भाव व अन्य भाव, यौन क्रियान्वयन, अनुभव आधारित स्मृति संकलन व अवचेतन की अहम आन्तरिक क्रिया कलापों का नियंत्रण करता है? रेटीक्यूलर फार्मेशन केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र (सेन्ट्रल नर्वस सिस्टम) का केन्द्रीय (कोर) संस्थान है?

— कि पूरे केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के मध्य जाल सा फैला रेटीक्यूलर फार्मेशन अवचेतन में होने वाली हर प्रक्रिया का निर्धारक व नियंत्रक होता है? चेतना जगाने और बनाये रखने, भाव जगाने और भाव अभिव्यक्ति में अहम भूमिका निभाता है? रेटीक्यूलर फार्मेशन स्वयं लिम्बिक सिस्टम के माध्यम से चेतन मस्तिष्क के अन्तर्गत कार्य करता है? चेतन मन की क्रियाएँ ऐच्छिक (वॉलेन्टरी) होती हैं, अवचेतन की क्रियाएँ स्वतःस्फूर्त (ऑटोमेटिक)? चेतन अवचेतन का समन्वय एवं सामंजस्य ही सुखी और सार्थक जीवन का आधार है - जीवित रखने को अवचेतन मस्तिष्क और जीवंत रखने को चेतन मस्तिष्क?

15, विजय नगर, डी-ब्लॉक,
मालवीय नगर, जयपुर-302017
मोबाइल - 8003516198

तन्त्रागमे षट्चक्रविवेचनम्

पूरणचन्द्रजोशी

शरीरेऽस्मिन्ननेकेषां तत्त्वानां सद्भावेऽपि योगसाधनेऽत्यावश्यकरूपेण ज्ञातव्यम् अवयवादीनां स्वरूपाणि, तत्र कर्त्तव्यं ध्यानादिकं विज्ञाय कैवल्योपलब्धये चक्रज्ञानं परमोपयोगीति। योगिजनाः मानवशरीरं सप्तप्रासादं भवनं मन्यन्ते। तत्र मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूरक-अनाहत-विशुद्धआज्ञासहस्रारचक्राणीति सप्त प्रासादाः सन्ति। सर्वेभ्यो वस्तुभ्योऽद्भुतं विश्वस्मिन् यदि किमपि वस्तुविद्यते, तदिदं मानवशरीरमेवास्ति। एतद्द्वारैव भौतिकाध्यात्मिकजगतोऽनेके चमत्कारा उपलभ्यन्ते। अतो मानवशरीरं आश्चर्याणामाश्चर्यं विद्यते। अनेनैव निर्वाणसुखम् निर्विकल्पसमाधिः, भगवत्प्राप्तिश्चावाप्यते। शरीरमिदं व्यवहारस्य परमार्थस्य च मुख्यसाधनमस्ति। एतद्द्वारैवाभीष्टस्य वस्तुन उपलब्धिसम्भवा जनकल्याणभावनया प्रयतमाना अपि मानवाः अस्वस्थे शरीरे नात्मनो नापि समाजस्य देशस्य, राष्ट्रस्य वा वास्तविकं कल्याणं कर्तुं प्रभवन्ति। अतः समेषामात्मकल्याणकामिनां पुरुषाणामपि योगसाधनद्वारा शरीरारोग्यसम्पादनमत्यावश्यकमस्ति।

भूमण्डलस्याधारो यथा मेरुरस्ति, तथैव मानवशरीरस्याधारोऽस्ति मेरुदण्डः। मेरुदण्डो हि पृष्ठमांससंलग्न-यस्त्रिंशदस्थिखण्डैः सम्बद्ध आभ्यन्तरेऽवकाशवान् वर्तते। अस्याधस्तमो भागो अतितीक्ष्णः सूक्ष्मश्चास्ति।

तत्समीपवर्ती भागः कन्द इति नाम्ना व्यवह्रियते। अत्रैव जगदाधारमहाशक्तेः प्रतिमूर्त्ति कुण्डलिनी विराजते। मेरुदण्डाद् बहिः वामभागे इडानाम्नी चन्द्रनाडी, दक्षिणभागे च पिङ्गलाख्या सूर्यनाडी च सम्बद्धास्ति। तयोर्मध्ये तेजोरूपा सुषुम्नानाडी मेरुदण्डस्याभ्यन्तरे मूलाधारकन्दभागादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रसहस्रारपर्यन्तं गच्छति। यथा कदलीस्तम्भे दलानि भवन्ति, तथैव सुषुम्णाभ्यन्तरे क्रमशः वज्रा-चित्रिणी-ब्रह्मनाड्यः सन्ति। योगक्रियाद्वारा जागृता कुण्डलिनी ब्रह्मनाडीद्वारा ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं गत्वा शिवेन सह संयुज्यते। मेरुदण्डस्याभ्यन्तरे ब्रह्मनाड्या ग्रथितानि षट् कमलानि सन्ति, यानि षट्चक्राण्युच्यन्ते। प्रत्येकं कमलं विभिन्नवर्णं विभिन्नसंख्याकदलं च विद्यते। तेषां नामानि प्रसिद्धानि सन्ति। तथा हि गरुडपुराणे—

मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरकमेव च।
अनाहतं विशुद्धाख्यमाज्ञा षट्चक्रमुच्यते।।

1. तत्र मूलाधारचक्रं यथा —

यथाधारचक्रं सुषुम्णाख्यलग्नं ध्वजाधो गुदोर्ध्वं चतुर्णयुक्तम्।
अथोवक्त्रमुद्यत्सुवर्णाभवर्णैर्वकारादिसान्तैर्युतं वेदवर्णैः।।

मूलस्य शरीरकारणस्य विन्दोः आमयत्वेमेदं चक्रं मूलाधार इत्युच्यते। मेरुदण्डस्याधस्ताद् कन्दप्रदेशसम्बद्धपायूपस्थयोर्मध्ये विद्यमानम् एतत् चक्रकमलं विद्युद्वर्णं विद्यते। तत्र चत्वारि दलानि सन्ति तेषु चतुर्षु दलेषु क्रमशः सानुस्वाराः व-श-ष सेति चत्वारो वर्णा विद्यन्ते। एतन्मध्ये स्वयम्भूलिङ्गमस्ति, यस्य चतुर्षु दिक्षु सार्धत्रिवलयसर्पाकारा स्वमुखे पुच्छं दधाना सुप्ता कुण्डलिनी शक्तिर्विराजते।

प्राणायामैः प्रबुद्धा इयं कुण्डलिनीशक्तिर्विद्युल्लतावद् मेरुदण्डस्याभ्यन्तरे ब्रह्मनाड्यां प्रविष्टा सती ऊर्ध्वं सहस्रारे गच्छति तथा चोक्तं *हठयोगप्रदीपिकायाम्*—

विद्युद्विलासवपुषः श्रियमावहन्तीं
यान्तीं स्ववासभवनाच्छिवराजधानीम्।
सौषुम्णमार्गकमलानि विकासयन्तीं
देवीं भजे हृदि परामृतसिक्तगात्राम्।।

इदं चक्रं कामफलप्रदं कामरूपाख्यं पीठमुच्यते। अत्रोपासकानां सकलकामनासिद्धिर्भवति। एतत्समीपे किञ्चिदूर्ध्वं मूलकन्दः पक्ष्यण्डस्वरूपोऽस्ति, यतः सर्वा नाड्यो निःसरन्ति। तदुक्तं *ध्यानबिन्दूपनिषदि*—

ऊर्ध्वं मेहादधो नाभेः कन्दो योऽस्ति खगाण्डवत्।
ततो नाड्य समुत्पन्नाः सहस्राणि द्विसप्ततिः।।

2. स्वाधिष्ठानचक्रं यथा

सिन्दूर-पूररुचिरारुणपद्ममन्यत्,
सौषुम्णमध्यघटितं ध्वजमूलदेशे।
अङ्गच्छदैः परिवृतं तडिदाभवर्णै-
र्वाद्यैः सबिन्दुलसितैश्च पुरन्दरान्तैः।।

उपस्थसमीपे सुषुम्नानाड्यां हीरकप्रभं सिन्दूरवर्णमिदं चक्रं विद्यते। अत्र षड्दलानि सन्ति, तेषु क्रमशः सानुस्वाराणां ब-भ-म-य-र लेति षण्णां वर्णानां स्थितिर्वर्तते। अस्य बीजं वरुणबीजं 'व' इति वर्तते। कमलकर्णिकायां राकिणीशक्तिरस्ति। अत्रोपासनेनाकर्षणशक्तिः सिद्ध्यति—

3. मणिपूरचक्रं यथा—

तस्योर्ध्वे नाभिमूलं दशदललसिते पूर्णमेघप्रकाशे,
नीलाम्भोजप्रकाशैस्सहितजठरे डादिफान्तैः सचन्द्रैः।
ध्यायेद् वैश्वानस्यारूणमिहिरसमं मण्डलं तत् त्रिकोणे,
तद्वाह्ये स्वस्तिकाख्यैस्त्रिभिरभिलसितुं तत्र वह्नेः स्वबीजम्।।

मेघसदृशं महाप्रभं विद्युदाभं च चक्रमिदं नाभिप्रदेशे मेरुदण्डस्याभ्यन्तरे सुषुम्णायां स्थितमस्ति। एतत् कमलं नीलवर्णं विद्यते। अत्र दशदलानि सन्ति, तेषु सानुस्वाराः ड-ढ-ण-त-थ-द-ध-न-न-फेति दश वर्णाः सन्ति। अस्य बीजं वह्निबीजं 'रं' इति विद्यते। कर्णिकायां लाकिनीशक्तिर्वर्तते। एतस्य नाभिचक्रमित्यपि नाम श्रूयते।

4. अनाहतचक्रं यथा—

तस्योर्ध्वे हृदि पङ्कजं सुललितं बन्धूककान्त्युज्वलं,
काद्यैर्द्वादशवर्णकैरुपहितं सिन्दूरागान्वितैः।
नाम्नानाहतसंज्ञकं सुरसरुं वाञ्छातिरिक्तप्रदं,
वायोर्मण्डलमत्र धूमसदृशं षट्कोणशोभान्वितम्।।

उद्यदादित्यसन्निभस्यास्य चक्रस्य स्थितिर्हृदयसन्निहितायां सुषुम्णायामस्ति चक्रमिदं अरुणवर्णैर्द्वादशभिर्दलैर्युतं वर्तते। द्वादशसु दलेषु क्रमशः क-ख-ग-घ-ङ-च-छ-ज-झ-ञ-ट ठेति द्वादशवर्णाः सानुस्वारा स्थिता सन्ति। अस्य बीजं वायुबीजं 'यं' इति वर्तते। कर्णिकायां काकिनी शक्तिः। एतच्चक्रं पूर्णगिर्याख्यं पीठमप्युच्यते। अत्रोपासनेन सर्वाणि इन्द्रियाणि वश्यानि भवन्ति।

5. विशुद्धचक्रं यथा—

विशुद्धाख्यं कण्ठे सरसिजममलं धूमधूम्रावभासं,
स्वरैः सर्वैः शोणैर्दलपरिवसितैर्दीपितं दीप्तबुद्धेः।
समास्ते पूर्णेन्दुप्रथिततमनभोमण्डलं वृत्तरूपं,
हिमच्छायानागोपरिलसिततनोः शुक्लवर्णाम्बरस्य।।

अस्य चक्रस्य स्थितिः कण्ठदेशे मूले विद्यते। एतत् कमलं धूम्रवर्णैः षोडशदलैर्युतमस्ति। तत्र षोडदशषुदलेषु अ-आ-इ-ई-उ-ऊ-ऋ-ॠ-ऌ-ॡ-ए-ऐ-ओ-औ-अं-अः इत्येते षोडश स्वरा विराजन्ते। अस्य बीजं नभोबीजं 'हं' इत्यस्ति। कर्णिकायां शाकिनी शक्तिरस्ति। अत्रोपासनेन सङ्कल्पसिद्धिर्भवति अस्य ज्ञानाधारपीठमित्यपि नामान्तरं विद्यते। एतल्लक्षणं च—

विशुद्धिं तनुते यस्याज्जीवस्य हंसलोकनात्।
विशुद्धं पद्ममाख्यातमाकाशाख्यं महत्परम्।।

6. आज्ञाचक्रं यथा—

आज्ञानामांबुजं तद्धिमकरसदृशं ध्यानधामप्रकाशं,
दृक्षाभ्यां वै कलाभ्यां परिलसितवपुर्नेत्रपत्रं सुशुभ्रम्।

तन्मध्ये हाकिनीं सा शशिसमधवला वक्त्रषट्कं दधाना,
विद्यां मुद्रां कपालं डमरुजपवटीं बिभ्रती शुद्धचित्ता।।

चक्रमिदं भ्रुवोर्मध्ये मेरुदण्डस्याभ्यन्तरे ब्रह्मनाड्यां स्थितमस्ति। कमलमेतत् श्वेतवर्णं द्विदलञ्च विद्यते। तत्र तयोर्दलयोः सानुसवारौ हक्षौ इत्येतौ द्वौ वर्णौ विद्येते। कर्णिकायां हाकिनी शक्तिः। अस्य बीजं प्रणवोऽस्ति, एतदु-ड्यानाख्यं पीठमपि प्रोच्यते, अत्रोपासनेन वाक्सिद्धिर्भवति। *विश्वसारतन्त्रे* चक्राधिष्ठात्र्यः षड्देव्यः एवमुक्ताः सन्ति।

डाकिनी राकिनी चैव लाकिनी काकिनी तथा।
शाकिनी हाकिनी चैव क्रमात् षट् पङ्कजाधिपाः।।

एवं त ग्रन्थेषु षट्चक्राणि तेषां दलानि तद्गतदेवताः तद्वाहनानि बीजानि च निर्दिष्टानि सन्ति। सद्गुरोः सहाय्येनैव साधने साफल्यं निश्चितं नान्यथा। इति शम्।

शुक्लयजुर्वेदमाध्यन्दिनीविभागः, अतिथिः अध्यापकः,
श्रीवेंकटेश्वरवैदिकविश्वविद्यालयः,
तिरुपतिः (आन्ध्रप्रदेशः)
चलवाणी-09550621228